# चक्कर क्लब

यशपाल

विप्लव कार्यालय, लखनऊ.

दूसरा संस्करण [ मूल्य १॥)

## समर्पण

बुद्धिबल यद्यपि बहुतेरा,
मनमें छाया घोर अँधेरा—
तू मनकी आँखें खोल,
ले तर्क तराजू तोल……!

बाबा मन की आँखें खोल……

य….

# चक्कर क्लब

परिचयः—

अपने कुछ मित्रो को क्लब का बहुत शौक़ है। घास की हजामत कर सँवारे हुए टैनिस के लॉन से घिरे कई क्लबो में, जहाँ काँच की खिड़कियो और झिलमिल परदो की ओट से मेज़ो पर सजे बिल्लौर और चाँदी के बर्तन दिखाई देते हैं, जहाँ बढ़िया सिगरेटों और सिगारो के धुएँ मे आरती उतारी जाती है, जहाँ से कहकहो और किलकारियों की दबी-दबी आवाज़ें आती हैं, उन्होंने अपनी तृषित आँखें प्रायः दौड़ाई हैं परन्तु बरामदे में खड़े, सफ़ेद चोग़ों पर लाल पेटी बाँधे चपरासी के भय से वहाँ अपनी पहुँच हो नही सकती। पत्तल पर चील के जा बैठने से जैसे कौवे दूर ही दूर मण्डराकर काँय-काँय किया करते हैं, ठीक वैसे ही अपने यारो की भी अवस्था है।

परन्तु आवश्यकता और इच्छा तो अनुभव होती ही है। हाथ-पैर के असमर्थ होने पर भी ज़ुबान तो चलती ही है। कविता से प्राप्त होने-वाले सांसारिक आनन्द की भाँति कह-सुनकर ही अपने साथी भी मन की तृष्णा पूर्ण करने का यत्न करते हैं। मकान के लिये किराया और फ़र्नीचर के लिये पैसा नहीं; फिर अपना सत्संग हो तो कहाँ? निश्चय हुआ कि घूम-घामकर दिल बहलाया जाय, जगह-जगह का रस लिया जाय और अपने क्लब का नाम रहे—'चक्कर क्लब!'

हाथ में कुछ साधन न होने पर भी चक्कर क्लब का प्रत्येक मेम्बर तीसमारखाँ है। उन्हें विश्वास है कि उनकी प्रत्येक बात अमूल्य है। उनकी बातो पर समाज आज भले ही खीसें निकाल कर हँस दे परन्तु कल वह उन्हें स्वीकार करेगा। सम्भव है, वे प्रमाण के तौर पर काम आयें। उस समय उनके वचनों के सम्बन्ध में शंका और विवाद न हो;

जैसे आज शास्त्रों के सम्बन्ध में होता है कि कौन वचन प्रक्षिप्त × और कौन मूल है, इस जालसाज़ी से बचने के लिये इन्हें छपवा देने का प्रबन्ध किया गया। चक्कर क्लब की इन बातों को छापने का साहस किया केवल 'विप्लव' ने। परन्तु चक्कर क्लब के भाग्य से विप्लव को ही समाधिस्थ हो जाना पड़ा। विप्लव के समाधिस्थ या स्थगित हो जाने पर चक्कर क्लब ने अपनी जान बचाने के लिये विप्लवी-ट्रैक्ट में 'बेकार ऐण्ड कम्पनी लिमीटेड' का भेस धारण किया। बाना तो बदला परन्तु बान न बदली। विप्लवी-ट्रैक्ट भी इस अग्नि को पचा न सका। विप्लवी-ट्रैक्ट ने भी जब साथ न दिया तो सत्य की पुकार को जीवित रखने के लिये इसे ग्रन्थ रूप धारण करना पड़ा। इसकी ऐतिहासिक विवेचना के लिये विप्लव, विप्लवी-ट्रैक्ट और ग्रन्थ का अवलोकन हितकर होगा।

चक्कर क्लब के लिये 'बेकार एण्ड कम्पनी' नाम उसके गुण के अनुरूप ही था। बेकार कहलाने में मेम्बरों का तिरस्कार नहीं बल्कि अभिमान है, यह बात बेकार शब्द की व्याख्या से ही स्पष्ट कर दी गई थी। बेकार से अभिप्राय अपदार्थ, फ़िज़ूल या निकम्मा नहीं। यह नहीं कि जो कोई चाहे खाली हाथ हिलाता और जम्हाई लेता आकर बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड या चक्कर क्लब में भरती हो जाय। चार आना सालाना चन्दा देकर भी इसमें जो कोई चाहे भरती नहीं हो सकता। चक्कर क्लब में 'बेकार' शब्द का अर्थ है :—

( क ) वे लोग जो यत्न करने पर भी पेट भरने के लिये कारोबार नहीं पा सकते। बेकार की वास्तविक परिभाषा यह है कि वह समाज की मौजूदा हालत से परेशान हो और उसे बदलने का यत्न और इच्छा करे। इसलिये वे राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ता बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड या चक्कर क्लब के मेम्बर हो सकेंगे। जो काकवृत्ति से यानी

× बाद में मिला दिया गया।

कौवे की तरह माँग-छीनकर अपना निर्वाह चलाते हैं और सदा क्रान्ति के लिये काँय-काँय किया करते हैं।

जो लोग घर में काफ़ी मालमता होने के कारण कोई काम करने की ज़रूरत नहीं समझते, बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड के मेम्बर नहीं बन सकते। उदाहरण के तौर पर इस देश की बड़ी-बड़ी रियासतों के मालिक बेकार फिरा करते हैं या सेठजी भी दुपहर की धूप में भोजन करने के बाद कुछ देर बेकारी में सुस्ताते हैं। यह लोग बेकार नहीं गिने जायँगे और न 'बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड' के मेम्बर बनने के हक़दार होंगे।

( ख ) बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड या चक्कर क्लब के सदस्य दो प्रकार के होंगे। एक सम्मानित बेकार ; जिन्हें अपना पेट भरने के लिये कोई रोज़गार मिल ही नहीं पाता। परिस्थितियों ने समाज की मौजूदा व्यवस्था पर शहीद होने के लिये उन्हें चुना है। उनका काम है कि मजबूर होकर समाज की मौजूदा व्यवस्था को बदलने की चेष्टा करें। यों तो सम्पूर्ण समाज दुखी और शंकित है परन्तु जिनका दुःख फ़िलहाल सहा जा सकने योग्य है, वे कुछ समय या कुछ पीढ़ियों तक उसमें सड़गल सकते हैं। परन्तु जिनके लिये मौजूदा समाज में जीवित रह सकने का कोई उपाय नहीं, वे समाज की अवस्था में परिवर्तन करने के लिये यत्न क्यों न करें ?....उन्हें इसमें कौन जोखिम ?........ कोई उनसे क्या छीन लेगा ?....डुबकी लगाने में उन्हें डर क्या ?.... उन्हें कुछ निचोड़ना नहीं पड़ेगा ? इनसे वीरता और साहस की आशा कर क्लब इन्हें सम्मान के योग्य समझता है।

( ग ) सम्मानित या विश्वस्त बेकारों के अलावा क्लब में 'एण्ड कम्पनी' या सहायक लोग भी सम्मिलित हो सकते हैं। एण्ड कम्पनी या सहायक लोग उन्हें समझा जायगा जो शुद्ध अर्थ में तो बेकार नहीं परन्तु जिन्हें अपने परिश्रम का पूरा फल नहीं मिलता या जिन्हें अपनी

शक्ति और योग्यता के अनुसार परिश्रम करने और उसका फल पाने का अवसर नहीं मिलता। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय कि जिनकी आवश्यकतायें पूरी नहीं होतीं और जिन्हें तरक्की का अवसर नहीं। उदाहरणतः ऐसे कारोबारी जो बड़े रोज़गारियों के मुक़ाबिले अपना कारोबार नहीं चला सकते या ऐसे नौकर लोग, जिन्हें सदा ही बेकार बन जाने का भय बना रहता है। इस श्रेणी दफ्तरों में काम करनेवाले क़लम-मज़दूर या कारख़ानों में काम करनेवाले वे सब मज़दूर शामिल हैं, जिनकी नौकरी की ओर दफ़्तरों और बाहर कारख़ानों के नौकरी या मज़दूरी की तलाश में खड़े लोग भूखी-नज़र लगाये रहते हैं और आधा पेट मज़दूरी लेकर भी इन बेचारों की नौकरी झपट लेने को तैयार रहते हैं।

( घ ) वे किसान जो पर्याप्त भूमि न होने के कारण या भूमि से की गई पैदावार अनेक उपायों से भूमि के मालिक के पेट में चले जाने के कारण परेशान रहते हैं। किसानों की ऐसी सन्तान जो अपनी पैत्रिक ( औरस ) सम्पत्ति-भूमि के अनेक भाइयों में बँट जाने की आशा से भूखे मरने के भय से व्याकुल हैं, बेकारों की 'एण्ड कम्पनी' या सहायकों में शामिल हो सकते हैं।

( ङ ) जेल जाने के आदी सत्याग्रही जिन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन से केवल इतना सम्पर्क है कि वे सदा जेल जाने के लिये तैयार रहते हैं—क्योंकि जेल में न रहने के समय वे बेकार * ही रहते हैं—भी सहायक सदस्य समझे जा सकते हैं।

( च ) साधु-सन्त; चन्दाग्राही और भिखमंगे लोग, जो भीख माँगकर बदले में दुआ और आशीर्वाद दे देते हैं, बेकार नहीं समझे जायँगे। उनकी रोज़ी है, खाते-पीते लोगों को पुण्य करने का अवसर देकर उनके लिये स्वर्ग पहुँचने का प्रबन्ध करना। ऐसे लोग समाज की मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन लाने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करते।

---

* यहाँ बेकार शब्द का अर्थ 'निकम्मा' है।

स्त्रियों की समस्या अलबत्ता कुछ टेढ़ी है। समाज के लाभ के दृष्टिकोण से इस देश की सभी स्त्रियाँ प्रायः बेकार रहती हैं। निर्वाह के लिये नौकरी मज़दूरी वे नहीं ढूढ़तीं। उन्हें उसकी ज़रूरत भी महसूस नहीं होती। क्लब का फैसला है कि उन्हें बेकार नहीं समझा जा सकता। क्योंकि वे सब वास्तव में घरेलू नौकर हैं। रोटी, कपड़े और ज़ेवर पर वे घर सम्हालने और बच्चे पैदा करने का काम करती हैं। वे न बेरोज़गार हैं और न बेचैन हैं।

स्त्रियों के लिये संस्कृत साहित्य में 'वामा' * शब्द आया है। अर्थात् वे उल्टे चलती हैं। मौजूदा सामाजिक स्थिति में उनका तर्ज़ बिलकुल उल्टा है। ग़रीब श्रेणी की स्त्रियाँ जिन्हें घर के भीतर या बाहर मेहनत-मज़दूरी करनी पड़ती है और जिनपर पड़ती है मार; भारत की सबसे अधिक शोषित और दलित श्रेणी किसानों और मज़दूरों की भाँति बेज़ुबान और चुप हैं। मध्य वर्ग तथा ऊँचे वर्ग की स्त्रियाँ जिन्हें घर में या बाहर कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती और जिनकी नाज़बरदारी के लिये उनके मर्द मदारी के रीछ की तरह नाचा करते हैं, दिल बहलाने के लिये स्वतंत्रता और समानता की माँग का प्रस्ताव पास करती रहती हैं। इनकी स्वतंत्रता का नुसख़ा है—पति की छत्रछाया बनी रहे, सिर पर जिम्मेदारी कोई न हो और स्वच्छन्दता पर्याप्त रहे।

( छ ) स्त्रियों की मेम्बरी बेकारों में और एएड कम्पनी या सहायकों में बिलकुल ही मना नहीं है। परन्तु केवल वही स्त्रियाँ इसमें सम्मिलित हो सकती हैं जो असंतुष्ट हों। असंतुष्ट शब्द का सही अर्थ समझ लेना आवश्यक है। यह ध्यान रखना चाहिये कि ज़ेवर काफ़ी न मिलना या सन्तान न होना असंतोष का मुनासिब कारण नहीं समझा जायगा। स्त्रियों के लिये असंतोष के मुनासिब कारण यह हो सकते हैं—मन माफ़िक पति न मिल सकने के कारण अपना जीवन निरर्थक समझ रही

---

* वाम का अर्थ है उल्टा और वामा का अर्थ है सुन्दरी।

हों या आयु काफ़ी हो जाने पर भी कहीं पक्की की नौकरी न मिल सके।

**उद्देश्य और साधन**

चक्कर क्लब या बेकार एण्ड कम्पनी के संगठन का उद्देश्य है—अपनी समस्या को समझना-समझाना। स्पष्ट शब्दों में कहिये तो कहा जायगा, दिल का गुबार निकालना। इस उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन है, कह डालना या ज़ुबान हिलाना। चक्कर क्लब में किसी भी विषय पर विचार हो सकता है। राजनीति, समाज, साहित्य, नाच-गाना आदि कोई भी विषय, जिसका मनुष्य के जीवन से सम्बन्ध हो, चक्कर क्लब के विचाराधीन है। इस रूप में बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड अनलिमिटेड या असीम है परन्तु पैसे-धेले के मामले में नितान्त लिमिटेड या सीमित है।

**विशेष विवरण**

यों तो सम्पूर्ण देश-जाति और राष्ट्र से ही बसा हुआ है परन्तु यह सम्भव नहीं कि उँगली उठाकर बता दिया जाय कि जाति या राष्ट्र कौन और कहाँ है? इसी प्रकार यह बता देना कि चक्कर क्लब या बेकार एण्ड कम्पनी कौन और कहाँ है, कठिन है। जिस प्रकार राष्ट्र या जाति की भावना सत्य है, उसी प्रकार चक्कर क्लब की भावना भी सत्य है। यह भावना है, असंतोष को पाप न समझ उसे प्रकट करने की; असंतोष के कारणों की खोजकर उनका उपाय करने की। इस भावना की विशेषता है कि समस्याओं को व्यक्तिगत रूप में सीमित न रखकर उन्हें सामाजिक रूप देने की प्रवृत्ति; जैसा कि शास्त्र का उपदेश है। शास्त्र में कहा है 'कलौ शक्ति संघे' अर्थात् कलियुग में शक्ति संगठन में या सामाजिक भावना में ही हो सकती है। इसलिये बातधर्मी, असंतुष्ट बेकार वीरों का हवाई संगठन चक्कर क्लब और बेकार एण्ड कम्पनी लिमिटेड के रूप में प्रकट हुआ।

---

साहित्य, कला और प्रेम····

भारत के प्राचीन कवियो ने वर्षा ऋतु का जैसा बखान किया है, उस सबसे सहमत हो सकना चक्कर क्लब के सदस्यों के लिये कठिन है। वह समय और था, वे आदमी और थे ; वे गये, उनका समय गया।

आज प्रशस्त विशाल प्रासादों में गवाक्ष से आती हुई वर्षा की महीन-महीन फुहार, सामने क्षीणकटि, कसी हुई अंगिया में जोबन दबाये, मेंहदी से चित्रित दो उँगलियों से घूँघट का कोना उठा, कान तक फैले नयनों में मुस्कराहट भर बाण छोड़ती हुई नायिका कहाँ हैं ; जो मेघों की गर्जना से भयभीत हो नायक से लिपट जाती थीं ? और कहाँ हैं अब वे ग्राम-बधु, जो उमड़ते-घुमड़ते, ऊदे ऊदे बदरा की ओर अपने कजरे नयना फैला साजन की याद में बेसुध हो जाती थीं ? साजन के लौट आने से पहले ही बूँदो से चूनरी का चोखा रंग फीका पड़ने पर जो हाथ उठा बादल को शाप देती थीं ? जिनके सरस नयनों से नगर की अट्टालिका और ग्राम के पनघट पर रस बरसता था ?

और आज ?·······आज तो वे जार्जेट की 'डलशेड' * साड़ी पहन, कालिज की लारी में बैठ, साजन समूह पर बहुत-सी धूल और उड़ती-उड़ती नज़र डालती हुई वहाँ जा छिपती हैं, जहाँ लोहे के सींखचे जड़े फाटक पर लिखा रहता है—"बग़ैर इजाजत भीतर जाना मना है।" गागर की जगह उनकी बग़ल में दबी रहती है छतरी। रुनुन-झुनुन

* जिस रंग में भड़क न हो।

करनेवाले पायजेब की जगह जिनके पैरों से आती है, ऊँची एड़ी की खट-खट की आवाज़। वह ऊँची एड़ी, जिसे फार कर कोई भाग्यशाली काँटा उनकी महावर रंगी एड़ी को चूम नहीं सकता और किसी भाग्यशाली देवर को वह एड़ी छू पाने का अवसर नहीं।

आज वर्षा की प्रतीक्षा रस राग के लिये नहीं की जाती। कंकाल देह किसान मेघों की ओर शंकित दृष्टि दौड़ाता है, इस आशंका से कि फ़सल न होने पर लगान कहाँ से दिया जायगा और पुरवासी (नागरिक) मेघों की प्रतीक्षा करते हैं लूह से झुलसे शरीर पर फूली हुई घाम के कारण फूटनेवाली चिनगों से छटपटाते, बन्द कोठरी में पसीने से गलते और दम घुटते हुए शरीर के लिये शीतल वायु का झोंका पा सकने की आशा में।............और आज पावस की क्रीड़ा होती है, वेसमय बरसते मेघों को उलाहना देने में। भीगते कपड़ों से गली के कीचड़ में फिसलते-फिसलते बाबुओं के दफ़्तर पहुँचने में। जहाँ देर से पहुँचने के कारण साहब की घुड़की और जुर्माना, घर लौटते समय पर्याप्त सौदा न ले आ सकने से घरवाली का तिरस्कार उनकी प्रतीक्षा करता है। आज पावस की क्रीड़ा होती है, वर्षा में भाग-भागकर चुचुआती छत पर मिट्टी डालने जाने में और टपके के नीचे घड़े के ठीकरे सजाने में।

वर्षा ऋतु की निरंतर वर्षा में दो जीवों के बुरे दिन आ जाते हैं। एक धोबी के गधे के जिसे सिर भर छिपाने की जगह नहीं मिलती और दूसरे चक्कर क्लब के शौकीन तबीयत पर साधन-हीन मेम्बरों के, जिन्हें कोई स्थान नहीं मिलता जहाँ चार जने मिल बक-झककर दिल की भड़ास निकाल सकें।

जाने क्या सोचकर पानी तीन दिन से बरसे ही जा रहा था। किसी पार्क की घास पर या सड़क पर चक्कर क्लब का सत्संग हो सकना सम्भव न था। इसलिये उस रविवार की दोपहर को चक्कर क्लब के सज्जनों के

सबर का बाँध टूट गया। क्लब के एक भलेमानुस सहायक मेम्बर के घर बराम्दे में ही उन्हें एकत्र होना पड़ा। यह सज्जन भलेमानुस इसलिये हैं कि इनके यहाँ एक पुराना तख़्त है और कुछ मोढ़े पड़े रहते हैं। मेहमानो के सम्मान के विचार से गृहपति ने किसी-न-किसी तरह तेल में छुँकी घुघुनी का प्रबन्ध किया। बिना दाँव के ताश खेलने की भी तजवीज़ की गई परंतु उसमें किसी का मन न लगा।

एक सज्जन को शायद बरस भर से बिछुड़ी अपनी युवती पत्नी की याद ने सताया। अपने घुटनों का आलिङ्गन कर कुछ विस्मृति के से भाव में उनके मुख से निकल गया, "आज जो घर पर होते·········?"

उनकी इस दर्द भरी कराहट को सुन उनकी बग़ल में बैठे सज्जन ने किलकारी भरकर कहा—"वाहरे पट्ठे·········आज जो घर पर होते·······। हाँ-हाँ, आज जो धर पर होते···········!" दो तीन दफ़े वे दोहरा गये और फिर स्वयं ही उनकी आँखें किसी कल्पना या स्मृति की ओर चली गईं। कुछ खोये से वे बैठे रहे।

इनकी बात को उठाया तीसरे सज्जन ने, "आज जो घर पर होते"। शब्दों को तौलकर वे बोले, "आज····जो····घर····पर होते ?············ समस्या पूर्ती की जाय ?"

समस्या पूर्ति की कोशिश की गई। किसी ने कहा, "आयरे घने-घने बरदवा, सजनी सूनी परी सेजवा।"' और आगे न कह सके। किसी ने कहा "मन गोरा तरफ़े नन्हीं-नन्हीं बुदियाँ·········" और रह गये।

मकान नामधारी कच्ची ईंटों के इस चौखटे के सामने जहाँ तख़्त पर चकर क्लब का सत्संग जम रहा था, ज़रा दाईं ओर को एक भव्य मकान है। दो मंज़िल का, नये ढंग का नया मकान, सीमेण्ट से पुता हुआ। ऊँची कुर्सीदार उसका नीचे का बरामदा लाल रंग की टाइल से मढ़ा है। बरामदे की सीमेण्ट की बनी धन्नी से गमलों में लटकनेवाली बेलें लटक रही हैं। भीतर के कमरे की खिड़कियाँ बरामदे में खुलती हैं।

खिड़कियों पर रेशमी जाली के परदे पड़े हैं सही परंतु वर्षा के कारण होनेवाले अंधेरे का प्रतिकार करने के लिये भीतर जो बिजली का तेज़ बल्ब जलाया गया था, उससे सब कुछ दिखाई दे रहा था।

यह कमरा वह था जिसे भले आदमियों के यहाँ ड्राइङ्गरूम या बैठक कहा जाता है। दीवारें थीं हल्के नीले रंग में पुती हुई। उन पर काँच मढ़े बड़े-बड़े फ्रेमों में चित्र लटक रहे थे; यमुना तीर पर चीरहरण प्रसिद्ध सिनेमा नटी क्लाराबौ, नर्तकी ह्वाइट रोज़, नृत्यरता मेनका और नीलवर्ण कृष्ण के गले में गोरी बाँह डाले वंशी की शिक्षा प्राप्त करती हुई राधिका। नीचे तीन-चार छोटे फ्रेमों में योरूपियन चित्रों की प्रतिछाप थी। अँगीठी की कानस पर बिछी जाली की झालर पर विलायती उर्वशी ( वेनिस ) और रम्भा ( डायन ) की हाथ-हाथ भर क़द की नग्न मूर्तियाँ विस्मय की मुद्रा में खड़ी देखने वालों को विस्मित कर रही थीं। फ़र्श पर बिछा था नीला कालीन! कमरे के एक कोने में रखा था रेडियो जो दुपहर के प्रोग्राम में गा रहा था, "मोरे अँगना में आये आली, मैं चाल चलूँ मतवाली.......। चोली पै नज़रिया जाय, गोरी चुनरी लिपट मोसे जाय............।"

रेडियो के समीप खड़ी थीं प्याज की गाँठ की तरह अनेक छिलकों में लिपटकर रहनेवाली एक युवती। आयु के विचार से वे युवती थीं परन्तु घर की सहूलियत के विचार से लड़की। उनकी साड़ी का भड़कीला लाल किनारा कमर से ऊपर और नीचे के पुष्ट भागों की ओर संकेत कर रहा था। उनके एक हाथ में था 'सारंग'। रेडियो की टेबिल पर उनके दाँये हाथ की उँगलियाँ और कालीन पर दाँये पैर की चप्पल ताल दे रही थी। बाँये पैर पर बोझ दिये उनका शरीर डोल रहा था। दूसरे कोनेमें ढलती आयु के एक भलेमानुस सुबह का अख़बार देखरहे थे।

क्लब के लोग घुघुनी चबाते हुए उड़ती-उड़ती नज़र उस ओर फेंक लेते थे। क्लब में सन्नाटा था क्योंकि क्लब के इतिहासज्ञ कहानेवाले सबसे

बढ़बोले मेम्बर सतृष्ण आँखों से खिड़की की राह उस ओर टकटकी लगाये थे। गृहपति ने उन्हें उस ओर घूर-घूरकर न देखते रहने के लिये कहा परन्तु उत्तर मिला—"हम किसी का कुछ छीन लेते हैं क्या? देखना भी मना है? जिसे पा नहीं सकते उसे देखही लेने दो! कविता पढ़कर जैसे रस मिलता है वैसे ही देखने में भी सुख होता है। इसे दृश्य काव्य कह लीजिये। और फिर हम निष्काम भाव, दार्शनिक रूप से देख रहे हैं, इसमें हर्ज़?" उसी समय एक मेम्बर को जाने क्या सूझी कि वे गाने लगे—"जारी बदरिया जा, तू साजन का संदेसा ला!" गृहपति ने घबराकर कहा, "भाई दार्शनिक क्यों फ़जीहत कराना चाहते हो, जानते हो यहाँ सब इज्ज़तदार बड़े आदमी रहते हैं............"

साहित्यिक ने बिगड़कर ऊँचे स्वर में कहा—"हम किससे कम इज्ज़तदार हैं जी?" इनकी सहायता में बोल उठे दार्शनिक—"हम साजन को संदेसा भेजने की बात करें तो बेहयायी और दूसरे आँचल पकड़कर खींच लें और हँस-हँसाकर झगड़ें, चोली दबायें तो कुछ चर्चा नहीं.........हम ज़िक्र भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम, वो क़त्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होती।" सहसा सामने के मकान में बरामदे के सुन्दर लाल फ़र्श पर कालिख और कीचड़ से भरा एक जूता छप से आ गिरा।

खिड़की के समीप बैठ अख़बार पढ़ने वाले प्रौढ़ पुरुष हाथ में अख़बार थामें बरामदे में निकल आये। गरजकर उन्होंने कहा—"यह क्या छिनालपन है?" पल भर में उनका क्रोध और तीखा स्वर चरम सीमा पर पहुँच गया—"हरामजादे कहीं के, मज़ाक करते हैं, रसिया बनते हैं, नंगे कहीं के?.........यहाँ भलेमानसों की बस्ती में बहू बेटियों के बीच मज़ाक करते हैं!" क्लब के गृहपति भय से काँप उठे। उन्होंने समझा, उनके मेहमानों की रसिकता फल लाई। कुछ दूसरे मेम्बर भी सकपका गये।

प्रौढ़ पुरुष की इस ललकार के उत्तर में सामने और अग़ल-बग़ल के मकानों से 'हैं, हैं, क्या, क्या,' की आवाज़ें·······आने लगीं। उस समय दिखाई दिया, गली के कीचड़ में फिसलने का भय न कर, जल्दी-जल्दी क़दम उठाता हुआ एक महरा आक्रमण से बचने के विचार से दोनों हाथ सिर पर रखे, भयभीत मुद्रा में भागा चला जा रहा है। सम्मानित सज्जन के मुख से निकलने वाले वाक्य बाणों का रुख़ उसी ओर था। यह देख क्लब के सज्जनों का भय दूर हुआ कि उनकी रसिकता का भेद न खुलकर वह अपराध बन जाने से बची रही।

सामने और अग़ल-बग़ल के मकानों से क्या-क्या और क्यों-क्यों का कुछ उत्तर न दे, प्रौढ़ सज्जन तीव्र स्वर में चीखे चले जा रहे थे—"बदमाश, लुच्चा, हड्डियाँ तोड़ दी जाँयगी, सिर काट लिया जायगा····।"

इस रोमांचकारी दृश्य से आकर्षित हो गली में वर्षा और कीचड़ की परवाह न कर बहुत से भले आदमी उनके बरामदे में आ कूदे। गली की भद्र महिलायें भी कौतूहल न रोक सकीं और खिड़की तथा किवाड़ों की सांध से यह दृश्य देखने लगीं। अवसर देख चक्कर क्लब के सज्जन भी वहाँ जा पहुँचे। बार-बार यह प्रश्न पूछे जाने पर कि आख़िर हुआ क्या और कैसे ? प्रौढ़ सज्जन मुख से थूक की फ़ुहार छोड़ते और अदृश्य महरे की ओर हाथों से इशारा करते हुए बोले—"अजी वो हरामज़ादा महरा यहाँ गली में छिनारा करता है। बदमाश ने—सामने की उस खिड़की की तरफ़ इशारा किया"—हाथ बढ़ा सामने के मकान की ओर संकेत कर उन्होंने कहा—"और वहाँ से महरी ने उससे दिल्लगी करने के लिये यह कीचड़ और कालिख भरा जूता उस पर फेंका और देखिये यहाँ आके गिरा और तमाम दीवारें और पाम रखने के यह पीतल के गमले छिंटा गये। देखिये तो साले बदमाश की करतूत। जूतियाँ लगें तो होश आये !"

"कहाँ गया बदमाश, साला ? मारो साले को !" कई ओर से लल-

कार सुनाई पड़ने लगी। ग़नीमत यह हुई की महरा गली से निकल चुका था और वर्षा के कीचड़ में गली-गली महरे को ढूँढ़कर उसे शिष्टाचार की शिक्षा देना किसी ने आवश्यक न समझा।

संकेत से सबको चुप कराकर चक्कर क्लब के इतिहासज्ञ ने पूछा—"आख़िर इस महरी ने यह किया क्यों ? महरे ने गाली दी होगी ?"

"अजी वाह !"—हाथ को तिर्छे आगे बढ़ाकर प्रौढ़ सज्जन ने कहा—"वह साली मुस्करा रही थी..................बदमाश है एक नम्बर की !"

चक्कर क्लब में साजन को संदेसा भेजने का गीत गानेवाले दार्शनिक ने कहा—"तब तो दोनो प्रेमी जीव रहे। महरे के प्रेम आवाहन के उत्तर में महरी ने प्रेम बाण चलाया परन्तु बाण लक्ष भ्रष्ट हो वह आपके बरामदे में जा गिरा।"

उनकी इस बात का विरोध गली के एक महाशय ने किया—"प्रेम क्या ; बदमाश हैं साले !" दूसरे एक महाशय ने कहा—"प्रेम क्या ? यह क्या प्रेम है कि राह चलते खिड़की में बैठी औरत को इशारा कर रहे हैं और वह किवाड़ की ओट से झाँक रही है ! यह प्रेम है या लुच्चापन और छिनारा।"

"तो फिर प्रेम है क्या"—दार्शनिक साहब पूछ बैठे।

गली के एक दूसरे सज्जन ने उत्तर दिया,—"यह साले कमीने प्रेम थोड़े ही कर सकते हैं। यह तो बदमाशी करते हैं।" एक और महाशय बोले,—"अरे प्रेम तो बहुत बड़ी चीज़ है पर कोई प्रेम कर सके तब तो ! प्रेम उसे कहते हैं जैसे मीरा प्रेम करती थी। उन्हें प्रेम दीवानी कहते थे और जैसे राधा ने प्रेम किया था।"

"यह तो सब ठीक है, परन्तु वह प्रेम होता क्या है ?—दार्शनिक ने फिर पूछा।

चक्कर क्लब के साहित्यिक बोले,—"प्रेम-प्रेम सब कोई कहे प्रेम न

जाने कोय ! शब्दों में प्रेम को प्रकट कर देना कठिन है। यह मन की स्वर्गीय भावना है। क्या ख़ूब कहा है शायर ने, जिन्हों का इश्क़ सादिक़ है वो कब फ़रियाद करते हैं, लबों पै मोहरें ख़ामोशी दिलों में याद करते हैं।" और एक गहरी साँस ले, अपने रूखे लम्बे, केशों को छिटकाकर उन्होने कहा—"प्रेम बिना सूना है संसार !"......"प्रेम ही है जीवन का सार ! वह साहित्य की सुगन्ध है। वह बकने की चीज़ नहीं, अनुभव की वस्तु है।"

गली के एक और महाशय बोल उठे—"प्रेम क्या मोह है एक क़िस्म का ! जो मनुष्य को अन्धा कर देता है। वास्तविक प्रेम तो वह है जो भगवान से हो ! सांसारिक प्रेम झूठा है और भगवान का प्रेम सच्चा। एक को कहा जाता है इश्के मिजाज़ी यानी आने जानेवाला और दूसरा है, इश्के हक़ीकी यानी सदा रहने वाला........!"

आध्यात्मिकता की गंध से ही दार्शनिक को छींक आ जाती है। झट टोक बैठे—"क्यों साहब, प्रेम क्या इन्द्रियों और मन से परे, कोई सदा बनी रहनेवाली आध्यात्मिक वस्तु भी हो सकता है ?"

"हो क्यों नहीं सकता"—भगवान के प्रेम का समर्थन करनेवाले सज्जन ने कहा—"हो क्यों नहीं सकता ? आध्यात्मिक प्रेम शारीरिक प्रेम की तरह क्षणिक नहीं। प्रेम तो भगवान का रूप है और भगवान प्रेम रूप हैं। महात्मा गांधी ने कहा है............"

"किसी ने कहा सही"—दार्शनिक ने फिर टोका—"पर सवाल तो यह है कि प्रेम होता है आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियों और मस्तिष्क से। यह सभी वस्तुयें शरीर का अंग हैं, भौतिक हैं और क्षण-भंगुर हैं। जिन वस्तुओं की ओर इन्द्रियाँ और मन आकर्षित होते हैं, वे भी भौतिक और क्षणभंगुर हैं। इन दोनों के न रहने पर 'अमर' प्रेम रहेगा तो कैसे और कहाँ ?"

आध्यात्मिक प्रेम का समर्थन करनेवाले सज्जन ने कुछ क्रुद्ध होकर

कहा—"तुम आध्यात्मिक प्रेम की बात क्या जानो ? तुम फँसे हो इन्द्रिय-वासना के फेर में।"

वासना के लांछन से लज्जित न होकर दार्शनिक ने पूछा—"तो महाशय, इन्द्रियों और मन के बिना, इच्छा और वासना रहित आत्मा प्रेम कैसे करती है ?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर आध्यात्मिक प्रेम के प्रेमी सज्जन ने न दिया। मानो उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। बोल उठे इतिहासज्ञ—"इन्द्रियों और मन के बिना प्रेम कैसे होगा, यह नहीं समझ सकते ?.... खूब ! अरे वैसे ही जैसे बरसात के मौसिम में गुड़ की भेली पड़ी-पड़ी पसीजा करती है।"

"यानी आप आत्मिक प्रेम को नहीं मानते ?"—आत्मिक प्रेम के वकील विस्मय से चिल्ला उठे।

"आत्मा होती क्या है ? किसे कहते हैं आप आत्मा ?" दार्शनिक ने प्रश्न किया। आत्मा जैसी सर्वमान्य वस्तु के विषय में शंका होते देख सभी को विस्मय हुआ। आध्यात्मिक प्रेम के समर्थक ने तिरस्कार के स्वर में कहा—"आत्मा नहीं जानते ? आत्मा वह है जो आप में बोल रहा है ! और इस शरीर के जैसा का तैसा बना रहने पर जिस आत्मा के अभाव में सब समाप्त हो जायगा। आत्मा अमर है और निर्लिप्त। गीता में कहा है—नैनं छिन्दन्ती शस्त्राणी....यानी आत्मा वह है, जिसे शस्त्र काट नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।........समझे ?"

इतिहासज्ञ ने विस्मय प्रकट किया—"फ़ायरप्रूफ़, वाटरप्रूफ़, एयर-प्रूफ़ और बुलेटप्रूफ़ * ? चीज़ तो ज़बरदस्त है साहब ! हवाई हमले में विशेष उपयोगी होनी चाहिये। परन्तु यह पहचान जो आपने बताई कि हममें और आपमें जो कुछ बोलता है वह आत्मा है, कुत्ते बिल्ली में जो

* बंदूक की गोली यानी अस्त्र-शस्त्र।

बोलता है वह आत्मा है, तो रेल के इंजन में कौन बोलता है ?"

"क्या अजीब दलील देते हैं साहब आप"—आत्मवादी साहब ने कुछ नाराज़गी से उत्तर दिया—"इंजन जैसी निर्जीव वस्तु की उपमा आप जीवों से देते हैं। मनुष्य की शक्ति के बिना इंजन है क्या चीज़ ? और मनुष्य की शक्ति है आत्मा।"

"जीव और निर्जीव में क्या अन्तर है साहब ?" दार्शनिक पूछ बैठे।

जीव और निर्जीव में भी अन्तर आपको दिखाई नहीं देता" बिगड़ कर एक सज्जन ने पूछा। बहुत विनय के ढंग से दार्शनिक ने उत्तर दिया—"दिखाई देने की बात न कहिये साहब ? रेडियो में आपको दिखाई देती है केवल मैशीन परन्तु रांची और हजारी-बाग के प्रान्तों में रहनेवाले कोल-भीलों को यक़ीन नहीं आ सकता कि उसमें आदमी बन्द नहीं है। औरों की बात छोड़िये, अफ़्रीदियों के मौलाना लोगों का ही फ़तवा है कि रेडियो शैतान की ताक़त और आवाज़ है। ऐसे ही जीव के बारे में मतभेद हो सकता है। कोई कह सकता है कि बोल सकना जीव का गुण है। परन्तु बहुत से जीव हैं, जैसे अनाज में या फलों में पड़नेवाले कीड़े जो बोल नहीं पाते। कुछ लोग कहेंगे कि चलना-फिरना हिलना जीव का गुण है परन्तु समुद्र की तह में या चट्टानों की सतह पर रहनेवाले जीव या बनस्पति हिल डुल भी नहीं सकते। फिर जीव निर्जीव की पहचान कैसे ? ख़ैर, आप यह तो मानते हैं कि जीव जन्तुओं में जीव और आत्मा होती है फिर यह बताइये कि जिस प्रकार पशु मनुष्यों की तरह शारीरिक प्रेम करते हैं उसी प्रकार वे मनुष्यों की तरह आत्मिक प्रेम भी करते हैं या नहीं ?"

आत्मावादी सज्जन बिगड़ उठे—"आप पशु और मनुष्य को एक में मिला देना चाहते हैं ?...मनुष्य के समान बुद्धि पशु में कहाँ है ?"

"जी, यही तो निवेदन करना चाहता था ! पशु और मनुष्य में अन्तर है केवल बुद्धि का। बुद्धि पशु में भी होती है परन्तु उसका

बुद्धिबल कम रहता है, या कहिये उसका विकास मनुष्य की बुद्धि के जितना नहीं होता। काम मनुष्य भी वही करता है जो पशु करता है परन्तु बुद्धि की सहायता से अधिक सँवार कर और अधिक ज़ोरदार ढंग से। मनुष्यों में भी बुद्धि सदा एक सी नहीं रहती। जंगली मनुष्यों में कहीं कम बुद्धि होती है। सब पशुओं में भी बुद्धि एक सी नहीं होती; कुछ में कम, कुछ में अधिक। बुद्धि कम हो या अधिक, शारीरिक धर्म यानी सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से प्रकट होनेवाला प्रेम सभी जीवों और मनुष्यों में होता है अपने क्रम को जारी रखने के लिये ही सृष्टि स्त्री-पुरुष में आकर्षण पैदा करती है। प्रेम और आकर्षण का प्राकृतिक, शाश्वत और मूल रूप यही है। जंगली और बिलकुल जाहिल मनुष्य भी ऐसा ही प्रेम करते हैं। आत्मिक प्रेम वे बेचारे नहीं जानते। बुद्धि और शिक्षा बढ़ने से प्रेम का रंग भी बदलने लगता है। इन्द्रियाँ थक जाती हैं। उनसे एक सीमा तक ही तृप्ति हो सकती है। इसलिये मनुष्य कल्पना और बुद्धि द्वारा भी खूब सुख भोगता है। परन्तु इस मानसिक सुख का आधार इन्द्रिय-सुख की कल्पना ही है। इन्द्रियों से किये जानेवाले प्रेम में छीना झपटी और मार-पीट का डर रहता है। इसलिये जब इन्द्रिय प्रेम का सुख, किसी को कुछ कहे बिना अहिंसात्मक रूप से कल्पना-ही-कल्पना में भोगा जाता है, तब उसे आत्मिक प्रेम कहते हैं। वास्तव में यह सब इन्द्रिय भोग के चतुरता पूर्ण ढंग हैं। इसे चाहे साहित्य कहिये या भगवद् प्रेम कहिये।"

दार्शनिक द्वारा की गई प्रेम की यह व्याख्या साहित्यिक को पसन्द नहीं आई। अनुत्साह से वे बोले—"मनुष्य की जितनी सद्भावना है, श्रेष्ठता है, उस सबको इन्द्रिय सुख का नाम देने से काम नहीं चल सकता। आप कहते हैं—प्रेम इन्द्रियों का आकर्षण मात्र है तो बताइये मित्र-मित्र में भाई-बहन में जो स्वर्गीय आकर्षण है, उसका

इन्द्रिय सुख से क्या सम्बन्ध ?" दार्शनिक के मुख के सामने अपना हाथ लाकर उन्होंने मुट्ठी यों सहसा खोल दी, जैसे दलील का तोता उन्होंने उड़ा दिया हो।

साहित्यिक ही की भाँति हाथ का संकेत कर दार्शनिक उत्तर देना चाहते थे परन्तु स्वयम बोलने का संतोष पाने के लिये, उनके उठते हुए हाथ को अपने हाथ से रोक इतिहासज्ञ बोले—"मित्र-प्रेम या दीदी-भैय्या का प्रेम यदि प्राकृतिक वस्तु है तो वह पशुओं में कहीं क्यों नहीं दिखाई देता साहब।"

"तो आप निरे पशु बन जाना चाहते हैं क्या ?"—आत्मावादी ने शंका की। इनकी इस चोट से चारों ओर बिखर गई हँसी और मुस्कराहट की परवाह न कर दार्शनिक ने उत्तर दिया—"पशु नहीं बन जाना चाहते परन्तु पाखण्ड भी नहीं करना चाहते।"

"पाखण्ड कैसा साहब ?"—चौंक कर साहित्यिक ने पूछा।

"यही कि स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक आकर्षण को आत्मिक प्रेम और शुद्ध प्रेम का नाम दिया जाय और फिर समाज के भय से बैठे-बैठे पसीजा जाय। भैय्या-दीदी का प्रेम यदि प्राकृतिक और स्वाभाविक है तो वह माता के प्रेम की तरह सब जगह समान रूप से क्यों नहीं होता ? भैया-दीदी के प्रेम का उफ़ान खास कर नौजवानी में ही क्यों आता है और बहिनें तो एक दूसरे के प्रेम में आहें भरतीं नहीं।"

हाथ उठाते हुए एक साहब ने सुझाया—"माना-माना ! परन्तु माता के स्नेह में इन्द्रिय सुख कहाँ रहता है साहब ?"

उपस्थित जनता की आँखों में झलकनेवाली घृणा की उपेक्षा कर दार्शनिक ने उत्तर दिया—"परन्तु माता का स्नेह है क्या ? इन्द्रिय सुख का परिणाम ही तो ! माता का स्नेह प्राकृतिक है क्योंकि प्रकृति या सृष्टि के क्रम को जारी रखने के लिये वह आवश्यक है। परन्तु यह आत्मिक प्रेम किस खाज की दवा है ?

इस बहस में किसी का उत्साह न देख उन्होंने फिर पूछा—"क्यों साहब यह महरे-महरी का प्रेम किस श्रेणी में आयेगा ? यदि........" उनकी बात पूरी होने से पहले ही एक और महाशय बीच में बोल दिये—"अरे साहब आप भी क्या कहते हैं ? छिनारा और लुच्चेपने को प्रेम का नाम दे बदनाम करते हैं।" उनके समर्थन में दो-एक और भी ऐसी ही आवाज़ें आईं।

"सो तो ठीक है" इतिहासज्ञ गम्भीरता से बोले—"परन्तु साहित्य में तो इसी प्रकार के प्रेम का चर्चा मिलता है। वासना से व्याकुल या प्रेमाकुल हो महरे ने गली से कुचेष्टापूर्ण संकेत किया और महरी ने प्रेम में उठाकर मार दिया जूता। परन्तु भागवत में भगवान् कृष्ण के जिस प्रेम का वर्णन है, उसमें तो भगवान नंगी नहाती सुन्दरी ग्वालिनों के लहगे-धोती ही उठा पेड़ पर चढ़ गये........" उन्हें टोककर प्रौढ़ सज्जन ने कहा—"क्या बकते हो जी—जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी !........तुम आध्यात्मिक प्रेम को क्या समझो ? और अपनी नीच भावना से ही भगवान की लीला का अर्थ लगाते हो।"

दार्शनिक बोले—"साहब आध्यात्मिक प्रेम नपुंसक प्रेम है। वासना को पूरा करने की जब सामर्थ्य न हो तो मन को बहलाने का तरीक़ा है। स्वयम् जो कुछ कर सकने का अवसर नहीं, भगवान् के नाम से उसकी कल्पना कर मन को बहला दिया। अपने को कृष्ण समझ लिया और समझ लिया कि कार्तिक की पूनों के दिन बगल में सखियों को समेटे जमुना तट पर रास कर रहे हैं ; मन चाहे प्रेमी को पा सकने का साहस नहीं, गाने लगीं—मोरे पिया हृदय बसत हैं, कुंज करूँ दिन राती। इन्द्रियों की विकलता से मन में उठनेवाले उफ़ान को सन्तुष्ट करने का यह एक ढंग है, जिसमें बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ता। इस प्रेम में इन्द्रिय वासना का स्थान नहीं तो लिपटने-चिपटने की चर्चा की ज़रूरत; उस अनुभव को याद क्यों किया जाय?"

क्लब के एक कॉमरेड दार्शनिक के मुख की बात ले उड़े—"अरे सुनिये, हम बतावें आध्यात्मिक प्रेम ऐसे है—जैसे कभी नन्हा बच्चा घोड़े के लिये ज़िद्द करने लगे तो काठ का घोड़ा उसे देकर समझा दिया जाता है कि देखो कैसा अच्छा घोड़ा है इससे खेलो! सोई बात है, वासना को तृप्त करने के साधन और अवसर है नहीं, और गाने लगे कि सबसे सुन्दर प्यारा तो अपने मनमें ही है और लगे अपने ही गले में गलबहियाँ डालने! या जैसे कॉलिज के लौंडे सिनेमा एक्ट्रेस की तसवीर देख अपनी होनेवाली बीवी की याद करते हैं।

साहित्यिक महाशय ने कहा—"यह समझ और रुचि का प्रश्न है। साधारण बुद्धि के मनुष्य को जहाँ केवल काम-वासना दिखाई देती है, परिमार्जित रुचि और कला के पारखी वहाँ कला की उत्कृष्ट कृति देख पाते हैं........!" उनकी बात को ठीक से न समझकर क्लब के कामरेड हाथ जोड़ बोले—"साहित्याचार्यजी कृपाकर साधारण बुद्धि की समझ में आने योग्य भाषा में समझाइये!"

अपनी प्रखर कलात्मकता के संतोष से साहित्यिक महोदय की आँखें ऊपर चढ़ गईं। दाँयें हाथ की तर्जनी उँगली उठा वे बोले—"सुनिये गुलाब का एक फूल खिला है। पूँछ और सींग हिलाता हुआ बैल आता है और जिह्वा के एक लपेटे में फूल को निगल जाता है। इसी प्रकार पूँछ और सींग रहित पुरुष पशु के लिये तरुण सुन्दरी के लावण्यमय शरीर का उपयोग उसे बाहों में निचोड़ लेने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। परन्तु सहृदय रसिक, कलात्मक कवि उसे केवल इन्द्रियों के भोग का ही साधन नहीं समझता। वह उसे व्यापक सौन्दर्य का प्रतिनिधि समझता है। वह ऊषा की अरुण आभा में, सूर्यास्त की रक्तिम छटा में—चौदस के चाँद में, जल पर नाचते कमल में, कोयल की कूक में, मृग के नयनों में उसे देख पाता है........।"

दार्शनिक महोदय ने टोंक दिया—"रसिक महोदय, रस भंग के

लिये क्षमा चाहता हूँ.........कलाविद रसिक लावण्यमयी तरुणी में जो सौन्दर्य देख पाता है, उस आकर्षण का आधार क्या है ?"

रस भंग हो जाने के कारण साधारण अवस्था में आ गये साहित्यिकजी के नेत्र और हाथ फिर फड़क उठे। पुलकित हो वे बोले—"सौन्दर्य की पूजा, सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की आराधना !" दार्शनिक ने फिर पूछा—"परन्तु कोई वस्तु सुन्दर लगती है तो उसका कारण होता है, किसी तृप्ति की आशा या तृप्ति की स्मृति, जो मनुष्य के मन में चाह को गुदगुदा देती है...........।"

चौंककर कवि महोदय ने कहा—"अहा, देखिये मनकी तृप्ति, कल्पना की उड़ान और बुद्धि के सुख को आप नहीं मानते क्या ?........."

कामरेड बोल उठे—"मनकी तृप्ति और बुद्धि का सुख क्या हवा में कुलांचे मारेगा ? कुलांच मारने के लिये भी किसी स्थान पर पांव टिकाने की आवश्यकता होती ही है। लावण्यमयी कामिनी की मुस्कान आपको याद आती है, इसलिये कि उस मुस्कान के बाद किसी और वस्तु की भी आशा की जा सकती है। कामिनी की मुस्कान नारंगी का सुन्दर छिलका है। आपको तृप्ति छिलके से नहीं, रस से ही होगी। कमल का फूल सुन्दर लगता है तो इसलिये कि उससे लावण्यमयी के कपोलों की याद रसिक जन को आ जाती है। लाल कोमल पल्लव अच्छे लगते हैं तो इसलिये कि उससे सुन्दरी के होठों की याद आ जाती है। उनके उपयोग का ध्यान आ जाता है। मन का सुख है, भोगे हुए भोगों की याद या भोग की कामना से भीतर ही भीतर उबलना.........यही साहित्य है।"

इन्हें टोक, सबल घूँसा ऊपर उठा एक और सज्जन ने कहा—"यह सब काम वासना और अश्लीलता है। इसीलिये ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार के अश्लील साहित्य को निषिद्ध बताया है। और यदि

हमारी अपनी सरकार हो तो ऐसी किताबें ज़ब्त हो जाँय !" इन महाशय की बात की ओर कुछ भी ध्यान न दे साहित्यिक महोदय ने आँखें तिर्छी कर अत्यन्त विस्मय के स्वर में पूछा—"इन्द्रिय भोग से परे आप मनके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते क्या ? तो यह इच्छा उठती कहाँ है ? मन इन्द्रियों से पृथक वस्तु है श्रीमन् !"

दार्शनिक ने उत्तर दिया—"मन इन्द्रियों का केन्द्र है।" परन्तु उस ओर किसी ने ध्यान ही न दिया। साहित्यक का समर्थन करने के लिये दयानन्द के भक्त बोल उठे—"जी हाँ, गीता में लिखा तो है कि इन्द्रियाँ घोड़े हैं और मन उनका सारथी। सारथी को चाहिये कि घोड़ों को वश में रखे !"

"ठीक है आपका कहना, परन्तु सारथी घोड़ों को वश में इसलिये नहीं रखता कि घोड़े मार्ग पर खड़े-खड़े पत्थर हो जाँय ! वह तो उन्हें वश में रखता है इसलिये कि वे भटकें नहीं, तेज़ चाल से चलें और दूर से दूर की मंज़िल पर जल्दी से जल्दी पहुँचें ; यानी भोगों को अधिक से अधिक मात्रा में भोग सकें। ब्रह्मचर्य से शरीर को सबल इसलिये बनाया जाता है कि वह भोग के लिये अधिक समर्थ हो।"

क्लब के कॉमरेड कहते चले जा रहे थे परन्तु उन्हें टोक कर प्रौढ़ ने सुझाया—"मंज़िल इन्द्रियों का भोग नहीं, मोक्ष और भगवान की प्राप्ति है।" उन्हें तत्काल उत्तर मिला—"क्षमा कीजिये ! मोक्ष और भगवान इन्द्रियों का विषय नहीं हैं। मोक्ष के लिये कमल और कामिनी के चर्चा की आवश्यकता नहीं।"

साहित्यिक की ओर देख दार्शनिक ने प्रश्न किया—"क्यों साहब यही है न उद्देश्य साहित्य का ?"

अपने लम्बे सूखे केशों में उँगली चलाते हुए विचारपूर्ण मुद्रा में साहित्यिकजी ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"देखिये, यह बात ठीक

है, और नहीं भी है। वह यों कि इन्द्रिय सुख तो संसार में है ही परन्तु वह क्षणिक है। उससे ऊँचा सुख है काव्य सुख जो चिरस्थायी है। बुद्धि का सुख—इंटेलेक्टचुअल प्लेयर! इन्द्रियाँ थक जाती हैं परन्तु मन का सुख, काव्य सुख, बुद्धि का सुख स्थिर रहता है। कवि अपनी कल्पना की भूमि पर शब्दों की शक्ति से सुख की जो नदी बहाता है, वह सदा ही रसिक जनो को तृप्ति देती रहती है·······।"

"तृप्ति देती है किसे?·······उसका उपयोग क्या है?"—दार्शनिक ने दांये हाथ का घूँसा बांये हाथ की हथेली पर मारकर पूछा।

अपने नेत्रों को आधा मूँद, शान्त स्वर में साहित्यिक महोदय ने उत्तर दिया—"तृप्ति?····साहित्य स्थल इन्द्रियो की तृप्ति का विषय नहीं। उस सुख की प्राप्ति के लिये स्थूल सांसारिक साधनों की ओर दौड़ना नहीं पड़ता। वह सुख आत्म तृप्ति देता है। स्वयम् अपने ही भीतर, जिसे स्वान्तः सुखाय कहना चाहिए?"

दार्शनिक बोले—"इन्द्रियों की पहुँच से परे मन और आत्मा की तृप्ति साधारण स्वस्थ बुद्धि के लिये सम्भव नहीं, साहित्यक महोदय! ऐसी तृप्ति अभ्यास और विश्वास से ही हो सकती है और उसके लिये चाट लगानी होती है। जैसे तम्बाकू का धुआँ, मिर्च, काफ़ी की प्याली, शराब और अफ़ीम पहले रुचिकर नहीं लगते परन्तु एक दफ़े चाट पड़ जाने पर वह पेट भरनेवाले भोजन से भी अधिक जरूरी हो जाते हैं।"

क्लब के कॉमरेड साहब ने स्वर ऊँचा कर फिर टोक दिया—"ऐसी ग़ैर ज़रूरी चीज़ों का अभ्यास डाल लेने से मनुष्य समाज का क्या लाभ········?"

साहित्यिक महोदय, ऐसे नीरस मनुष्य की ओर केवल निराशा से देखते ही रहे। मुख से कुछ कह सकने का उत्साह उन्हें न हुआ। परन्तु दार्शनिक फिर बोले—"उपयोग सभी वस्तुओं का हो सकता है। परन्तु समय और परिस्थिति के अनुसार आपके लिये कवीन्द्र रवीन्द्र

की कविता 'मानस सुन्दरी', जिसमें वे मानस सुन्दरी से अनुरोध करते हैं—'समीप बैठ अपनी बाहुलता हमारे गले में डाल दो, अपने केश पाश को फैला दो, अपने होठों को ऊपर उठाओ'''और अस्पष्ट, अस्फुट भाषा में फुसफुसा दो, तुम मेरे हो, केवल मेरे हो, केवल तुम्हीं मेरे हो,' आपके किस काम की ? या कालिदास की वह कविता जिसमें वे कहते हैं,—पूर्व दिशा के क्षितिज पर अस्त होता हुआ चन्द्रमा स्तम्भित क्यों हो गया ;''''इसलिये कि छत पर सोये प्रीतम को सोया जान संकोचशीला प्रिया ने उसके होंठ चूम लिये। तब मक्कर साधे प्रियतम ने आँखें खोल दीं। लज्जाशील प्रेमिका का मुख लज्जा से लाल हो गया। वह इतना सुन्दर जान पड़ा कि उसे देख चन्द्रमा स्तम्भित हो, अस्त होना भूल गया। कामरेड आपके लिये इस कविता का कोई उपयोग नहीं'''''''।"

विस्मय से साहित्यिक ने टोका—"इसका कोई उपयोग नहीं; इस काव्यामृत का कोई उपयोग नहीं ? क्या कहते हैं आप'''''''?"

"ख़ाक इस कविता का उपयोग है"—कामरेड ने कहा। कामरेड को शांत रहने का संकेत कर इतिहासज्ञ बोले—"इस साहित्य का उपयोग किसी के लिये भी कुछ नहीं, यह आप नहीं कह सकते। किसी समय के राजाओं और सामन्तों के लिये इसका उपयोग था। कामना-पूर्ति के साधन उनके पास बहुतेरे थे ; परन्तु शरीर थककर शिथिल हो जाता था। कामना की आग को जलाने के लिये ऐसा साहित्य उपयोगी था, जैसे अधिक भोजन पचा सकने के लिये चूरण का उपयोग होता है। इस साहित्य का उपयोग कवि कालिदास ने बताया है—जैसे थके और शिथिल शरीर को सिप्रा की वायु से स्फूर्ति मिलती है, वैसे ही श्रान्त मन को साहित्य के संकेत से।"

"नहीं नहीं इसका उपयोग हमारे आज दिन के भले आदमियों यानी मध्यम श्रेणी के लिये भी है जो अप्राप्य वस्तु को साहित्य द्वारा

मन और कल्पना से प्राप्तकर भोग लेते हैं·······"—दार्शनिक कह ही रहे थे कि साहित्यक महाशय ने निराशा और उलाहने के स्वर में कहा—"तो फिर कविता का अर्थ क्या हाय रोटी-हाय रोटी ही है ?"

अपने ही हाथ पर घूँसा मारकर दार्शनिक बोले—"है क्यों नहीं ? पेट की तृप्ति के पश्चात् लगनेवाली भूख को तृप्त करनेवाली वस्तु का चर्चा यदि कविता हो सकता है तो पेट की भूख, रोटी की भूख का चर्चा, उसे पूरा करने के यत्न का चर्चा कविता क्यों नहीं··········।"

निराशा के स्वर में साहित्यक ने पूछा—"आपके विचार में कला क्या वासना को तृप्त करने का साधन मात्र है ?"

"क्षमा कीजिये साहित्यिकजी"—दार्शनिक ने उत्तर दिया—"जैसे भोजन को मिठाई का रूप दे देने से, उसमें सुगन्ध और चाँदी सोने के वर्क लगा देने से, यह नहीं कहा जा सकता कि वह पेट भरने का साधन नहीं रहा, उसी प्रकार कला को सूक्ष्म और हाव-भावमय बना देने से यह नहीं कहा जा सकता कि वह वासना या जीवन की भूख तृप्त करने का साधन नहीं रही·······।"—

"अजी यह कला है क्या बला ?"—कामरेड टोक बैठे। "कला है·······"—दार्शनिक ने सिर खुजाते हुए उत्तर दिया—"हाँ कला है मनुष्य का मँजा हुआ और सुसंस्कृत प्रयत्न,·······जीवन में तृप्ति की चेष्टा कला है। वासना जीवन की भूख है। वह कला को जन्म देती है और कला वासना का क्षेत्र बढ़ाती है। कला के किसी भी रूप को ले लीजिये; चित्र कला का क्या है, मन लुभानेवाले पदार्थों का या मन को गुदगुदानेवाले भावों और मुद्रा को आँखों द्वारा चिरकाल तक भोग सकने योग्य बना देना। संगीत है, कानों की राह से मस्तिष्क को सुख देनेवाला संवेदन पहुँचाना। नृत्य है शरीर की अंगभंगी द्वारा शरीर की लुभावनी कमनीयता को प्रकट करना·······।"

कामरेड बोल उठे—"भावों को प्रकट करना ; तभी तो नाचने-वालियाँ कमर बहुत मटकाती हैं और लहँगा उठा-उठा दिखाती हैं····।"

"क्या बकते हो जी ?" एक ओर से किसी ने डाँटा। "अजी वाह !" कामरेड ने उत्तर दिया—"देख न लीजिये जाकर स्टेज पर।"

साहित्यिक ने टोककर कहा—"देखिये क्या अत्याचार कर रहे हैं आप ? कला के मर्मज्ञ रसिकों की भावना और नीरस गँवार की भावना को आप एक में मिलाये दे रहे हैं। इससे कला का सूक्ष्म, सुसंस्कृत रूप नष्ट हो जायगा ; मनुष्य की संस्कृति यानी कल्चर कहाँ रहेगी ?" इनका समर्थन करने के लिये एक महाशय ने आवाज़ कसी—"अजी सभी धान बाइस पसेरी ?"

"वास्तव में उनमें कुछ भेद है भी तो नहीं।"—दार्शनिक ने उत्तर दिया—"भिन्न-भिन्न संस्कृति के मनुष्य वीणा की तारों की भाँति हैं। जो तार जितने अधिक सूक्ष्म और तने रहते हैं, वे उतने ही अधिक सुसंस्कृत मनुष्य होते हैं। वे ज़रा से सूक्ष्म स्पर्श से स्पन्दित हो जाते हैं। मोटे और ढीले तारों को अधिक ज़ोर से छूना पड़ता है। किसी की तृप्ति कवि रवीन्द्र की कविता में कामिनी को समीप बैठाकर हो जाती है तो किसी की साहित्यिक तृप्ति अँगिया दबाने का चर्चा किये बिना नहीं होती।" क्योजी, सिर खुजाते हुए कामरेड की ओर देख उन्होंने पूछा—"क्या है वह गीत,—'न लाको जोबन सरकारी है बचके रहो जी············!"

"वाह साहब, आपने तो भूसे और पान को एक में मिला दिया।" कहकहा लगाकर कोई साहब बोले।

अपनी बात को यों मज़ाक में उड़ जाते देख दार्शनिक चिल्ला उठे—"पान या चटनी और भूसा या बाजरे की रोटी वास्तव में दो वस्तु हैं भी नहीं, एक ही हैं। शरीर में तृप्ति रहने पर पान या चटनी जैसी सूक्ष्म वस्तु से शौक़ीनों को संतोष होता है परन्तु हल जोतनेवाले

को रोटी और हल खींचनेवाले को चाहिये भूसा। उद्देश्य तो तृप्ति ही है।"

कामरेड बोल उठे—"साहित्यिकजी निरी चटनी ही चाटियेगा तो गला ख़राब होकर श्वास रुकने लगेगा और मर जाइयेगा।"

अपनी उत्साहहीन आँखें उठाकर साहित्यिकजी ने पूछा—"क्या कहा आपने?"

हँसकर इतिहासज्ञ ने उन्हें उत्तर दिया—"निवेदन यह है कि साहित्य के भोजन में हाज़मे के लिये निरी चटनी ही न हो, कुछ पेट भरने की भी बात हो। प्रेम में आत्म-हत्या करना कविता है तो भूख से व्याकुल होकर रोटी पर झपटना कविता कैसे नहीं? अटारी के झरोखे में बैठी रानी का आहें भरना कविता है तो गोबर थापती गूजरी का प्रेम की गाली देना कविता क्यों नहीं?"

"अरे हाँ"—कामरेड ने टोककर पूछा—"अजी यह महरे महरी का प्रेम अभिनय कविता है या नहीं?"

कुछ चिढ़कर दार्शनिक बोले—"महरे-महरी का प्रेम कविता नहीं पाप है, क्योंकि महरा कम्बख़्त मन की चाह को सर्द आहों से प्रकट न कर सीधे-सीधे बक देता है। क्योंकि महरी 'हटो भी हम नहीं जानते' न कह, मान न कर, जूता मारकर प्रेम-क्रीड़ा करती है। उनका यह प्रेमाभिनय पाप है क्योंकि एक दूसरे से समय और स्थान निश्चित कर बाग़ या होटल में मिलने का उन्हें मौक़ा नहीं। उनका यह काम पाप है क्योंकि धड़कते हुए हृदय और आर्द्र स्वर में एक दूसरे को भैया और दीदी कह, आँखों में आँखें डाल, चुप रह जाकर अपने परस्पर आकर्षण को शुद्ध प्रेम का नाम देना उन्हें नहीं आता। और महरी को तमीज़ नहीं कि महरे को 'साँवरिया' कह, स्वयम् मीरा बन गीत गाये और मन के आवेग के लिये राह निकाल ले। उसे

साहित्य जो नहीं आता। उनका यह कर्म बदमाशी और लुच्चापन है क्योंकि वे काँच की खिड़कियों के पीछे, रेशम के पर्दों की आड़ में काउच पर बैठ एक दूसरे की कमर में हाथ नहीं डाल सकते.....।"

क्षमा कीजिये महाराज !"—हाथ जोड़कर मकान के मालिक प्रौढ़ सज्जन ने पुकारा—"क्षमा कीजिये, मेरे ही घर पर मेरा अपमान आपने बहुत कर लिया। यह कमरा घर के काम-काज और बाल-बच्चों के बैठने का है। आप अब कृपा कीजिये।"

दार्शनिक महोदय का मुख लज्जा और क्षोभ से लाल हो गया। वे एक ही छलाँग में बरामदे से गली के कीचड़ में कूद गये। उनके पीछे-पीछे कामरेड 'चलो भैया चलो, अपने तख़्त पर' कहते हुए सुन्दर बरामदे से कूद आये और उसके बाद इतिहासज्ञ और साहित्यिक महोदय अपनी चादर को सम्भालते हुए।

तख़्त तक पहुँचने पर देखा कि मोढ़े सब उठा लिये गये हैं और तख़्त खड़ा कर दिया गया है। दरवाज़े की साँकल हिलाने पर भीतर से अस्पष्ट-सी आवाज़ आई—"घर पर नहीं हैं। कहीं बाहर गये हैं।"

२

## दरिद्रनारायण की पूजा मत कर !

ऊँचे दर्जे के बाबू लोगों के मकान में दालान और दालान में तख़्त बिछे हैं। संध्या समय दफ़्तर से लौट वे बदन को साँचे में कसे रखनेवाले तंग कपड़े उतार, बन्धन से मुक्त शरीर को सहलाते हुए तख़्त पर बैठ जाते हैं। उनकी आँखों को बालकों की क्रीड़ा से सुख मिलता है। कानों में गृहलक्ष्मी के पाँव की पायजेब और कड़े-छड़े की छनक आती रहती है। रसोई घर से उठती व्यंजनों की सोंधी सुगन्ध नाक को तृप्ति देती है। पान और हुक्के की नली से जिह्वा के रस का कार्य चलता है। शरीर पर फिरती, शनैः शनैः खुजाती उँगलियाँ स्पर्श सुख देती हैं। उनकी कृपा के उम्मीदवार आकर चारों ओर दरबार लगाते हैं, उनके सद्‌गुणों का बखान करते हैं। इससे उनकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और मन की तृप्ति होती है।

साहबियत का रंग लिये बाबू लोग काम से लौट ड्राइंगरूम में सोफ़ा पर बैठ स्फटिक के समान स्वच्छ चीनी के पात्रों में चाय के मधुर और कशाय रस का पान करते हैं। फिर एक हाथ पतलून की जेब में और दूसरा बीवी की बांह में डाल हवाखोरी के लिये निकल जाते हैं। इसके अलावा उनके लिये लॉन में टेनिस और क्लब में ह्विस्ट है। उनके लिये दूसरा मार्ग है कि जोबन के रस से खुश्क मेम साहब के बटुए में टायलेट खरीदने लायक रुपये दे स्वयं वे 'किसी से' मिलने का वायदा पूरा करने चले जायँ।

मुसीबत है, सस्ती जात के बाबू लोगों की। बाबूगिरी उनसे नदी में बहते कम्बल की तरह चिपटी हुई है। सम्मानित समझे जाने के लोभ में वे अपने आपको बाबू पुकारते हैं परन्तु बाबूपन का ठाठ उनके प्राण चूसे जा रहा है। वे क्या करें? उनका घर दफ्तर की कुर्सी से अधिक रमणीक नहीं। दफ्तर से घर लौट जल का एक गिलास निगल, दफ्तर के सम्मानित कपड़ों को खूँटी पर लटका वे फिर घर से बाहर भागते हैं। घर में बच्चे को गोद ले खिलाने की तवालत से बचने और रसोई के धुयें से रक्षा पाने का उनके यहाँ एक ही उपाय है कि अमीनाबाद पार्क में बेंचों की शरण ली जाय। बीवी की नज़र से बचाये दो एक पैसों का सदुपयोग भी, चाट का पत्ता चाटने या बीड़ी फूँकने के रूप में, यहीं हो सकता है?

बीड़ी पिला सकने में समर्थ, बाबू पदवीधारी, बेकार कम्पनी के सहायक ऐसे ही सज्जनों की प्रतीक्षा में चक्करक्लब के सम्मानित दीर्घ-जिह्वा और दुर्मुख * मेम्बर सन्ध्या समय अमीनाबाद पार्क की प्रदक्षिणा करते पाये जाते हैं। पान की दूकान के सामने खड़े ऐसे ही एक परिचित को पहचान चक्करक्लब के इतिहासज्ञ और कामरेड लपके चले आये। मुफ़्त पान मिलने की आशा में, मित्रता के उद्‌गार से विह्वल स्वर में खीसें निकाल उन्होंने बाबू सज्जन को सम्बोधन किया—"पान खा रहे हो यार?"

पान को झटपट मुँह में छिपा कत्था भरी उँगलियों को पान की दूकान पर बिछे लाल कपड़े से पोंछते हुए बाबू सज्जन ने आदाब की तर्ज़ में हाथ हिला स्वागत कर निमंत्रण दिया—"बीड़ी पियो!" और पनवाड़ी को एक बण्डल बीड़ी "शेर मार्का" देने के लिये हुकुम दे दिया।

बीड़ी का बण्डल और इकन्नी से बचा पैसा वापिस मिलने की

---

* ज़बान दराज़ और ख़ाफ़गो।

प्रतीक्षा में यह लोग खड़े थे। फटा और मैला बुरका ओढ़े एक बड़ी 'बी' साहिबा ने आलमीनिम का कटोरा दिखा, अल्लाह के नाम पर पैसे की दरख़्वास्त की। इस आक्रमण से बचने के लिये, उस ओर पीठकर बाबू साहब ने कामरेड को सम्बोधन किया—"और सुनाओ कामरेड !"

भगवान धनी की उपेक्षा से परास्त न हो बड़ी बी ने दाता का हृदय पिघलाने के लिये, लम्बी दुआ दी—"पैसा हाथ का मैल है। एक पैसा दो ! अल्लाह तुम्हें बेशुमार दौलत बख़्शे, सेहत बख़्शे, दूध-पूत दे, बादशाहत दे, ओहदा दे, रुतबा दे और आख़िर में बहिश्त दे।" बाबू सजन ने संकोच और लज्जा से हाथ हिलाते हुए उत्तर दिया—जाओ माई, आगे देखो !" परन्तु माई पैसा मिलने की आशा इतने सहज न छोड़ सकती थीं। वे सखी का दिल पिघलाने के लिये बादशाहत और बहिश्त मिलने की दुआ करती गईं।

जान पड़ता है, कामरेड बाबू के संकोच और लज्जा से घबरा गये। कोई पैसा सजन की जेब में बचा रहने से मूँगफली की दावत हो सकने की आशा हो सकती थी। सजन की वकालत में बड़ी बी को सम्बोधन कर उन्होंने कहा—"अरे एक पैसे के लिये बादशाहत और बहिश्त बाँटती फिरती हो, अल्लाह के यहाँ तुम्हारा इतना लिहाज़ है तो खुद ही बादशाह क्यों नहीं बन जातीं या उसी से पैसा माँग लो।"

इस बीच में रेशमी चादर और खद्दर की धोती पहरें सेठ वेशधारी एक और सजन पान की दुकान पर आ खड़े हुए। मघई पानों का बीड़ा तैयार करने का हुकुम दे वे प्रतीक्षा करने लगे। कामरेड के इस निर्दय उत्तर पर वे चुप न रह सके। शरीर पर गरद की चादर के नीचे हाथ डाल जेब से एक पैसा निकाल बादशाहत और बहिश्त के ठुकराये जाते इस सौदे को उन्होंने खरीद लिया। कामरेड को नसीहत देने के लिये उन्होंने कहा—"किसी ग़रीब, मोहताज को कुछ दे नहीं सकते

तो आप उस पर गुस्सा क्यों दिखाते हैं। ग़रीबों पर आपको दया दिखानी चाहिये या गुस्सा?"

बाबू सज्जन का इकन्नी से बचा पैसा वापिस मिल चुका था। कामरेड और इतिहासज्ञ इनके साथ पार्क के भीतर घुसने के दरवाजे की ओर चले तो सेठ जी उपदेश देते हुए साथ हो लिये। इस उपदेश का उत्तर देने के लिये इतिहासज्ञ मुँह खोलना ही चाहते थे कि सामने पहिये लगे सन्दूक में बैठे अपंग कोढ़ी को घसीटते हुए दूसरे कोढ़ी ने दया की भीख माँग ली। भागवान दाता का हाथ फिर अपनी जेब की ओर गया। एक पैसा और निकाल, सन्दूक़ में बैठे कोढ़ी पर फेंकते हुए उन्होंने कहा—"अब बताइये, यह बेचारा अंगहीन ग़रीब क्या कर सकता है? इस पर दया करना अपना कर्तव्य है या नहीं?" आस-पास आते-जाते लोगों की ओर उन्होंने गर्व और विजय के भाव से देखा।

कामरेड अपनी बर्दाश्त से अधिक सुन चुके थे। भाड़ के चने की तरह चटखकर उन्होंने उत्तर दिया—"क्या होगा आपके इस पैसे से? उसका कोढ़ दूर हो जायगा; या कोढ़ी की उम्र कट जायगी? एक पैसा फेंककर आप उसके अन्नदाता बनने का अभिमान दूसरों को दिखाना चाहते हैं। इससे आपका दिल बहल गया परन्तु कोढ़ी का दुख तो दूर नहीं हो गया। उसका पैसा माँगना और गिड़गिड़ाना तो बन्द नहीं हो गया। उसके अन्नदाता बनने का अभिमान करनेवाले आप कौन होते हैं? उसके निर्वाह का प्रबन्ध करने की जिम्मेवारी समाज पर है। क्या आप समाज के मालिक हैं?.......जब समाज में मज़दूरों और किसानों का राज होगा तो समाज यह सब प्रबन्ध करेगा। समाजवाद में कोई भीख नहीं माँग सकेगा।"....अपने घूँसे से हवा में प्रहार करते हुए कामरेड ऊँचे स्वर में कहने लगे।

प्रशंसा और आदर के बजाय तिरस्कार और डाँट सुन सेठ जी एक क्षण के लिये स्तब्ध रह गये। यह अपमान चुपचाप निगल जाने

के लिये वे तैयार न थे। कामरेड की ओर घूरकर उन्होंने धमकाया—"तुम्हारा मतलब है ग़रीबों और दीन-दुखियों पर दया नहीं करनी चाहिये ? यही है तुम्हारा समाजवाद ? आग लगे ऐसे समाजवाद को जिसमें अपने ही पेट की फ़िक्र है। ग़रीब योंही मर जाँय क्या ! कैसी राक्षसों जैसी बात करते हो ?""बनते हैं समाजवादी ?"

सेठजी के मुख से निकले उदारता और करुणा के यह उद्गार जान पड़ता है काफ़ी दूर तक सुनाई दिये। कामरेड प्रत्युत्तर देना ही चाहते थे कि परेशान सूरत, ख़स्ता हाल, उतरती उम्र के, देहाती जान पड़नेवाले एक भले आदमी ने सेठजी के समीप आ हाथ जोड़ बिनती की—"सेठजी दो दिन से मेरे बाल-बच्चे भूखे हैं। बहुत परेशानी है, कुछ सहायता हो जाय ; भगवान् आपको सदा सुखी रखें। आपके सोने-चाँदी के महलों की ड्योढ़ी पर हाथी झूलें।"

इस अकस्मात आपत्ति से एक क़दम पीछे हटते हुए सेठजी ने कहा—"अरे भाई भगवान ने तुम्हें हाथ-पैर दिये हैं, कुछ काम करो !" सहायता माँगनेवाले व्यक्ति ने गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की—ग़रीब आदमी का घर देहात में है। कर्ज़ा और लगान न चुका सकने के कारण कुर्की और बेदख़ली हो गई। शहर में आये हैं। कोई अपनी जान-पहचान का नहीं। दो दिन से भटक रहे हैं। मुँह में दाना नहीं गया।

बेकारी के व्यापक संकट का ध्यान कर कामरेड के साथी बाबू ने सहानुभूति के स्वर में कहा—"ओफ़, कितनी बेकारी फैल रही है !"

उस देहाती को सम्बोधन कर एक ओर से किसी ने कहा—"मज़दूरी नहीं मिलती तो चोरी क्यों नहीं करते ?""तुम्हें भूख लगी है तो जहाँ से मिलता है छीनकर क्यों नहीं खा लेते ? माँगते क्यों हो ?" कामरेड ने घूमकर देखा उनके कंधे पर एक हाथ टिकाये और बग़ल में दो मोटी किताबें समेटे चक्कर क्लब के दार्शनिक अपनी लम्बी गर्दन, उन्हीं के कंधों के पीछे से ऊपर उठा सलाह दे रहे हैं।

देहाती को चोरी करने का उपदेश दिया जाता देख उपस्थित लोग विस्मय से दार्शनिक के दो दिन की हजामत से भरे और बड़े-बड़े गोल काँच के आइने से सुशोभित चेहरे की ओर देखने लगे।

"यह क्या, आप ग़रीब को चोरी करने का उपदेश दे रहे हैं; चोरी करेगा तो क्या जेल नहीं जायगा?"—सेठजी ने चादर से बाहर अपने हाथ को बढ़ाते हुए पूछा।

"जेल जायगा तो क्या हुआ? जेल में रोटी मिलती है। भूखे मरने की अपेक्षा रोटी खाकर जेल में रहेगा तो क्या बुरा है?"—दार्शनिक के समर्थन में कामरेड बोले।

"चक्की जो पीसनी पड़ेगी!"—एक ओर से किसी ने चुटकी ली।

"चक्की पीसेगा तो कौन जान निकल जायगी? रोटी तो भर पेट मिलेगी? अरे चक्की तो औरतें पीस लेती हैं।"—कामरेड बोले। जान पड़ता है, जेल की हवा वे काफ़ी दिन खा चुके थे। अधिकार पूर्ण स्वर में उन्होंने कहा—"यहाँ ऐसा कौन सुख यह भोग रहा है, जो इसे जेल में न मिलेगा?"

गाँधी टोपी पहने एक सज्जन ने वितृष्णा के भाव से कहा—"वाह साहब, क़ैद और स्वतंत्रता कभी बराबर हो सकती है? मनुष्य को चाहिये कि अपनी स्वतंत्रता के लिये जान दे दे। ग़ुलामी से तो मौत अच्छी। आदमी भूखा रहे पर आज़ाद रहे!"

दार्शनिक कामरेड इन महाशय के कंधे को छूकर बोले—"देखिये जनाब, आज़ादी का मतलब भी आप समझते हैं?"

प्रश्न करनेवाले की गुस्ताख़ी से कुछ नाराज़ हो उसकी आँखों में घूरकर अपनी गाँधी टोपी सीधी करते हुए इन्होंने उत्तर दिया—"समझते क्यों नहीं? कौन नहीं समझता? आज़ादी का मतलब है, स्वतंत्रता! जैसे आदमी स्वतंत्र होता है, आज़ाद होता है, जो चाहे करता है.... और क्या?"

खिलखिलाहट से हँसकर कामरेड बोले—"वाह साहब मतलब तो आज़ादी का आपने ख़ूब बताया ?"

रेशमी चादर ओढ़े सेठजी ने ऊँचे स्वर से समर्थन किया—"बताया नहीं तो क्या ? स्वतंत्र का मतलब आज़ाद नहीं तो और क्या है ? आदमी को बन्धन न हो ! अपनी इच्छा से जो चाहे करे, जहाँ चाहे रहे-सहे, रोज़गार कर सके, हथियार रख सके।"

दार्शनिक कामरेड बाबू साहब के बण्डल से एक बीड़ी ले, कामरेड की समाप्त होती हुई बीड़ी से चिनगारी ले रहे थे, उतावली से कश खींच-कर बोले—"जो चाहे सो तो दुनिया में कोई भी नहीं कर सकता सेठ जी ! अब यह आदमी चाहे कि आपकी रेशमी चादर उतार कर ओढ़ ले..........."

क्रोध में सेठजी ने ललकारा—"तुम्हारी हिम्मत है, तुम उतार देखो न ?" वे मल्ल युद्ध के पैंतरे से हो गये। दार्शनिक तुरन्त सम्भल गये। अपने कमची शरीर का ध्यान कर हाथ जोड़ उत्तर दिया—"नहीं सेठजी, यही तो हम कह रहे थे कि कोई नहीं उतार सकता।"

सेठजी ने विजय गर्व से गर्दन उठा चारों ओर देखा। दार्शनिक कहते चले गये—"मतलब हमारा यही था कि जो चाहे सो तो कोई नहीं कर सकता, न आज़ादी और स्वतंत्रता का यह मतलब ही है। ऐसी स्वतंत्रता तो समाज या संसार में एक समय एक ही आदमी भोग सकता है। उसके लिये दूसरे सब मनुष्यों को उसका ग़ुलाम बनना होगा। ऐसी स्वतंत्रता का मज़ा लिया होगा नादिरशाह ने, कंस ने या नीरो ने। स्वतंत्रता का मतलब है जीवन-निर्वाह के लिये कोशिश या मेहनत कर सकने का मौक़ा मिले और जो मेहनत हम करें, उसका पूरा फल पा सकें। बताइये, ऐसी स्वतंत्रता इस भले आदमी को कहाँ है; या कहाँ मिल सकती है ? इसकी बात छोड़िये, लाखों-करोड़ों आदमियों में से कितने आदमियों को ऐसी स्वतंत्रता है.......?"

दार्शनिक अपनी बीड़ी बुझ जाने के भय से उसमें कश खींचने के लिये रुके कि कामरेड बोलने लगे—"पूँजीवाद के राज में स्वतंत्रता केवल उन्हीं लोगों को हो सकती है, जिनके पास पूँजी हो यानी जिनके हाथ में पैदावार के साधन-ज़मीन, मिल, खाने वग़ैरा हों या इन वस्तुओं को पा सकने का साधन-बेशुमार पूँजी हो। जो अपने रुपये से बाज़ारों के व्यवसाय और कारोबार पर कब्ज़ा किये हैं। वे चाहे जैसे समाज के क़ायदे को चलाएँ? किसान मज़दूर और नौकरी पेशा आदमी की स्वतंत्रता कैसी? जिसकी रोटी का टुकड़ा दूसरे आदमी की इच्छा पर निर्भर है, उसकी स्वतंत्रता कैसी?"

गाँधी टोपीधारी सज्जन ने पूछा—"तो आपका मतलब है कि वह चोरी करे, डाका डाले?" अपनी समाप्त बीड़ी को फैंक कामरेड ने उत्तर दिया—"आप कहते हैं वह चोरी न करे? हम पूछते हैं, वह चोरी नहीं कर रहा तो क्या कर रहा है?.........चोरी है क्या? अपने परिश्रम से धन पैदा न कर दूसरे के परिश्रम से पैदा किये धन को हथिया लेना चोरी है? यही तो वह कर रहा है। अन्तर है केवल उसके तरीक़े में.........।"

कामरेड का हाथ पकड़ उन्हें चुपकरा, दार्शनिक बीच में बोल उठे—"नहीं साहब, यह चोरी नहीं, यह डाकाज़नी है।"

"डाकाज़नी?.........वाह साहब क्या कहने आपके।"—सेठजी क्षोभ के स्वर में बोले—ग़रीब आपसे दया की भीख माँगता है और आप उसे डाकाज़नी बताते हैं.........डाकू कहीं दया करने को कहते हैं? वे तो गले पर यों छुरी रखकर"—हाथ से छुरा चलाने का संकेत करते हुए भय सूचक आँखें फैला सेठजी ने कहा—"आपकी जमा निकलवा लेता है.........और क्या?"

इनका समर्थन गाँधी टोपी धारी महाशय ने किया—"निर्दय डाकू तो हिंसा करता है और भीख माँगनेवाला आपके हृदय तक

पहुँचने की चेष्टा करता है। भीख माँगनेवाला बल का प्रयोग और हिंसा नहीं करता।"

तर्जनी उँगली उठा, विशेष बलपूर्वक दार्शनिक बोले—"वह भी बल का ही प्रयोग है परन्तु डाकू से भिन्न बल का और दूसरे ही ढंग से.........यह आप जानते हैं, बल कई तरह का होता है ?"

"हाँ-हाँ, जानते क्यों नहीं"—गांधी टोपीधारी महाशय ने कहा—"पशुबल और आत्मिक बल।"

बगल से खिसकती पुस्तकों को सम्भालते हुए दार्शनिक बोले, "जी !....पशुबल या शारीरिक बल और आत्मिक बल या विश्वास के बल के इलावा और भी बल होते हैं। जैसे जिह्वा का बल जिससे वक़ील लोग काम लेते हैं; रूप का बल, जिससे हल्की तबीयत की औरतें काम लेती हैं; आँसू-बहाने या रूठ जाने का बल, जिससे शरीफ़ कहानेवाली स्त्रियाँ काम लेती हैं; रोने का बल, जिससे बच्चे काम लेते हैं। यह बल साधारण हैं। इनके इलावा कुछ बल विशेष प्रकार के होते हैं। जैसे, तबीयत में अपने प्रति दया पैदा करने का बल। इस बल से अंधा मँगता अपने और अपने बाल बच्चों के भूखा मरने की करुण कथा सुनाकर आप से सहायता ले लेता है। दिन में चाहे जितनी दफा पैसा देते हुए उसके सामने से गुज़र जाइये, वह पेट दिखाकर भूख की शिक़ायत करेगा। इससे अधिक सफल होता है कोढ़ी वह आपके हृदय में करुणा, भय, और घृणा पैदा करने की शक्ति रखता है। वह अपने सड़े, गले अंग दिखा आपको विवश करता है कि पैसा दीजिये। यदि आप आसानी से पैसा नहीं देते तो वह आपके दरवाज़े पर धरना देकर बैठ जायगा या अपने खून, पीप बहते और मक्खियों से भरे शरीर को आपके बहुत समीप लाकर आपके मन में उबकाई पैदा कर पैसा देने के लिये आपको विवश कर देगा। जीवन निर्वाह के लिये कोढ़ी का यह तरीका उसका साधन या बल है। उसे देखकर

आप जितने अधिक विचलित हों, उतनी ही अधिक सफलता उसे मिलेगी। इसके लिये वह अपने शरीर पर घाव बनाता है या खून-पीप से भरे मक्खियों को आकर्षित करनेवाले चीथड़े लपेट कर काम चलाता है। उसका उद्देश्य है, आपका 'हृदय परिवर्तन' कर पैसा देने के लिये विवश करना! एक और उपाय से हृदय परिवर्तन किया जा सकता है, आपको पैसा देने के लिये विवश किया जा सकता है। कोई स्त्री अपने कपड़ों पर ख़ून या लाल रंग के दाग़ लगा, दर्द से कराहती, और निर्बलता से लड़खड़ाती आकर कहती है, परदेश में, अभी हाल, सड़क पर उसके सन्तान प्रसव हो गयी; आप दयावान हैं कुछ सहायता कीजिये! सन्तान प्रसव हो जाने की खुशी की बधाई उसे दी जा सकती है परन्तु उसके सन्तान प्रसव कर देने की जिम्मेवारी हम पर कैसे है........?"

आप पर कोई जिम्मेवारी नहीं साहब!'—गांधी टोपी धारी सज्जन द्रवित स्वर में बोले—"आप न्याय और समता की दुहाई देते हैं, शोषण और अन्याय के नाश के नारे लगाते हैं परन्तु दूसरे के दुख से आप को क्या मतलब? दार्शनिक के विचारों के प्रति तिरस्कार भरी मुस्कराहट से, उपस्थित लोगों की ओर देख यह सज्जन बोले—"और क्या भाई! समाजवाद-साम्यवाद का तो मतलब ही है कि किसी को उसकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं, जो कुछ है हमारा ही है। हम सब कुछ खा सकें और हड़प सकें।"

इस लांछना और ताने से दार्शनिक सिटपिटा गये परन्तु क्रोध दिखाने से बात और भी बिगड़ जाती इसलिये होंठ दबाकर बोले—"हाँ भाई! जात बिरादरी का, हम पेशा का दर्द कैसे न हो? यदि धोखे धड़ी और छल प्रपंच से हृदय परिवर्तन करने के तरीक़े रोक दिये जायँगे तो सत्याग्रह से हृदय परिवर्तन की महिमा कैसे रहेगी........?"

"क्या........क्या,........क्या कहा, सत्याग्रह छल प्रपंच है?" गान्धी

टोपी धारी सज्जन ने क्रोध और विस्मय से आँखें निकाल पूछा।

"हाँ है"—सीना तानकर कामरेड ने उत्तर दिया। उनका कुर्ता पीछे से खींचते हुए दार्शनिक बोले—"अजी जाने दीजिये, सत्याग्रह की बात। अच्छा आप बताइये इन हीजड़ों को क्या कहेंगे? शारीरिक शक्ति-या पशुबल को वे काम में नहीं लाते। हिंसा वे नहीं करते। केवल प्रेम से अपना हक़ माँगते हैं।"

"अरे भैया है तो ठीक—" भीड़ में से किसी सज्जन ने समर्थन किया—'हीजड़े पहले प्रार्थना करते हैं, बाद में दरवाजे पर धरना दे सत्याग्रह करते हैं।"

भीड़ में चारों ओर खिलखिलाहट सुन दार्शनिक के मन से सिर पर आते शारीरिक बल के प्रयोग का आतंक दूर हुआ। भरोसे से हाथ उठाकर वे बोले—"यानी देखिये, वे लोग शारीरिक बल का प्रयोग बिलकुल नहीं करते और आपका हृदय भी परिवर्तन कर देते हैं। उनकी करतूत से तमाशबीन लोग आपके दरवाज़े पर खड़े हो जाँयगे। जनता के सामने तमाशा बनने के भय से आपको अपना हृदय परिवर्तन कर उनकी माँग स्वीकार कर लेनी होगी। इसी तरीक़े से सत्याग्रही शराब के ठेकेदार और विदेशी कपड़े के व्योपारियों और उनके ग्राहकों का हृदय परिवर्तन करने की चेष्टा करता है। सत्याग्रही का तरीक़ा है अपनी बात मानने के लिये लोगों को विवश कर देना। यही काम यह भीख माँगने वाले करते हैं। शारीरिक बल प्रयोग किये बिना अपनी कमाई का पैसा दे देने के लिये विवश कर देना उनकी कला और साइन्स है, यह भी तो सत्याग्रह ही है!

और, डाकू क्या करता है? वह चपत मारकर, छुरा चलाकर या बन्दूक दिखाकर आपको अपना पैसा दे देने के लिये विवश करता है। परिणाम एक ही है। भेद बलों के प्रयोग का है। एक जगह शारीरिक बल का प्रयोग होता है, दूसरी जगह करुणा या सहानुभूति पैदा कर

सकने के बल का। यह जितने लोग अपने परिश्रम से पैदा किये बिना दूसरे के परिश्रम से पैदा किये धन को पाना चाहते हैं, सब चोर डाकू हैं। फरक़ इनके चोरी और डाके के तरीक़ो में हैं, यानी किस ढंग से वह हमें अपना धन दे देने के लिये, या उनकी बात मान लेने के लिये विवश कर देते हैं, हमारा हृदय परिवर्तन कर लेते हैं। कोई थप्पड़-घूंसा, लाठी और छुरा दिखाता है? कोई कोढ़ और रोग से गले अंग की कोई मार सकने की धौंस देता है कोई मार खा-खाकर मर जाने की! कोई आपके सोये रहने पर आपका धन उठा ले जाता है, कोई आपके जागते, बोलते अनजाने में आपकी पाकेट काट लेता है। कोई आपको पीतल को सोना बता ठग लेता है, तो कोई आपकी, दो रुपये का सामान पैदा करने वाली मेहनत को चवन्नी की मज़दूरी बताकर ठग लेता है। कहिये हैं कि नहीं सब एक जैसे चोर-डाकू?" दार्शनिक ने अपनी उँगलियाँ नचाकर कहा—"अन्तर यह है कि कोई तरीक़ा आपकी पकड़ में आ जाता है, कोई नहीं। एक तरीक़ा ऐसा भी है कि आप लोगों की जेब काटिये और वे आपको अपना अन्नदाता मानें, आपकी इज़्ज़त करें। इसके लिये चाहिये पूँजी। पूँजी के ज़ोर से की जानेवाली चोरी शराफ़त का कारोबार कहलाती है। किसी को उल्लू बनाकर की जाने वाली चोरी सत्याग्रह, और घूँसे के ज़ोर से की जाने-वाली चोरी डाका कहलाती है!"

"अरे यार कामरेड!"—कामरेड के कंधे पर हाथ रखकर उन्हें बीड़ी पिलाने वाले बाबू बोले—"तुम भी क्यों नहीं ऐसा ही कोई तरीक़ा करते। इतने समझदार बनते हो, बड़े तीसमार खाँ! क्यों नहीं कहीं से थोड़ी सी पूँजी बटोर लेते! फिर पज़े ही मज़े हैं।"

"हम ऐसा कभी नहीं कर सकते!"—कामरेड बोले।

"अरे यार कहीं पूँजी पड़ी ही मिल जाय तो?"—बाबू ने मज़ाक किया। इस मज़ाक को गाली समझ कामरेड ने सिर ऊँचा कर

उत्तर दिया—"हरगिज़ नहीं, हम खुद चोरी करेंगे कि दुनिया से चोरी मिटा देना चाहते हैं।"

कामरेड की इस शेखी से हो-होकर हँसते हुए, रेशमी चादर ओढ़े सेठजी ने कहा—"वाहरे दुनिया से चोरी मिटानेवाले ! अभी तो उस भले देहाती को चोरी करने का उपदेश दे रहे थे।"

सेठजी के इस आक्षेप से चौंककर दार्शनिक कमच्चियों जैसी अपनी दोनों बाँहें उठाकर बोले—"पूँजीवाद की पर्देदार चोरी से, जोकि उम्र भर के लिये मनुष्य के परिश्रम करने की शक्ति और स्वतंत्रता को चुरा लेती है, निस्सहाय आदमी की यह प्रकट चोरी और डाकाज़नी कहीं बेहतर है। पूँजीवाद की इस चोरी का अन्त तभी हो सकेगा जब असहाय और असंतुष्ट लोग गिड़-गिड़ाकर चोरी करने—दूसरों की कृपा से रोटी का टुकड़ा माँगकर पेट भरने के बजाय अपने बल और अपने अधिकार से अपनी रोटी पाने की बात सोचने लगेंगे। पूँजीवाद असहाय जनता के जीवन से जीवन निर्वाह कर सकने के अवसर को ही चुरा लेता है तो फिर शेष रह क्या जाता है ? मनुष्य की जीवित रहने की इच्छा, उसकी भूख उसे मजबूर कर देगी कि खास क़िस्म की इस चोरी को सम्मान-जनक बना देनेवाली प्रथा का नाश कर दे। यह चोरी बन्द हो सकती है—शोषण की व्यवस्था को बदल देने से ! न कि भीख देकर लोगों को बेबसी के तरीक़े से चोरी करने का हौसला बढ़ाने से ? दरिद्रनारायण की पूजा का यह ढोंग ठाकुर लोगों की चाल है ताकि जीवन के लिये अवसर न पानेवाले लोग, उनकी कृपा से पलकर उनके कृतज्ञ बने रहें और अपने जीवन को असम्भव बना देनेवाली व्यवस्था को पलटने की कोशिश न करें, ठाकुरों की ठकुरैत न छिने ! भूख से व्याकुल जनता को मुट्ठी भर चावल पा संतुष्ट बने रहने का यह उपदेश देना एक जाल है। ग़रीबों को सीख दी जाती है चर्खे और ग्रामोद्योग से आधे पेट रोटी पाकर भी संतुष्ट बने रहो, ताकि पैदावार के साधनों के मालिक

ठाकुरों के सम्पत्ति के अधिकार न हिल जायँ। सुधारों और दया के यह सब ढोंग ठाकुरशाही की चोरी कायम रखने के तरीक़े हैं।"

"यानी आपका मतलब है कि दीन-दुखियों पर दया न की जाय, भूखे मरते को रोटी का टुकड़ा न दिया जाय, उन्हें यों ही मरने दिया जाय?"—सेठजी ने विस्मय से त्योरी चढ़ा पूछा।

"जी हाँ"—दार्शनिक ने उत्तर दिया—"आपकी दया होगी यदि आप उन्हें उनकी क़िस्मत पर छोड़ दीजिये। कृपाकर उन्हें धोखा न दीजिये कि आप उन पर दया कर रहे हैं। अपने अधिकारों की रक्षा को दरिद्रनारायण की सेवा का नाम न दीजिये। उन्हें उनकी अवस्था समझने दीजिये और उस अवस्था के प्रति उनमें असंतोष पैदा होने दीजिये। उन्हें अनुभव करने दीजिये कि आपके और उनके हित अलग-अलग हैं। परन्तु आप ऐसा क्यों करने लगे? आप तो बनेंगे दाता और महात्मा! ढोंग करेंगे दीनों और दरिद्रों के सेवक होने का? सुख, शान्ति, सेवा और अहिंसा का जाल बिछायेंगे और उसमें दलितों और ग़रीबों को सहायता देने के बहाने दान-पुण्य का चारा बिखेरेंगे। क्यों साहब, बहेलिया चिड़ियों को फँसाने के लिये जो चुग्गा फेंकता है, उसे आप दान और त्याग समझियेगा या नहीं?"

वह देहाती आया था पेट भरने के लिये दो पैसे माँगने परन्तु यहाँ उसे मिलने लगा उपदेश। मुँह बाये खड़ा वह यह तमाशा देख रहा था। दार्शनिक की वक्तृता का प्रभाव मज़ाक में उड़ा देने के लिये गाँधी टोपीधारी सज्जन ने उसे सम्बोधन कर कहा—"भैया, इन समाजवादियों से ही फ़रियाद करो! यह कहते हैं, भूखे और बेकार किसान-मज़दूर को भीख मत दो! यह तो उनका राज करायेंगे!"

बहस समाप्त होती जान आस-पास खड़े लोग मुस्करा कर चल दिये परन्तु कामरेड अपना घूँसा उठाकर उत्तेजित स्वर में बोले—"ठीक है, हम भी मँगवाकर ग़रीब जनता का अपमान नहीं करना

चाहते। हम चाहते हैं ऐसी बात कि किसी को भीख माँगनी ही न पड़े, जैसा कि रूस के समाजवादी राज में है। भीख माँगकर कोई दूसरों पर बोझ क्यों डाले ? सबको अवसर होना चाहिये कि अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार अपने निर्वाह के लिये काम कर सकें और उनकी मेहनत का फल उन्हें मिल जाय। फिर कोई भीख माँगेगा क्यों ?"

पार्क के किनारे खड़े-खड़े, चलनेवाली इस बहस से ऊबकर सेठ जी आराम से बैठने के लिये पार्क के भीतर जाने के दरवाज़े की ओर बढ़े। कामरेडों की बेतुकी बात का अन्तिम उत्तर देने के लिये उन्होंने सुनाकर ऊँचे स्वर में कहा—"समाजवाद की बहुत फिक्र उन्हीं लोगों को रहती है, जिनके अपने घर डेरा-डण्डा कुछ नहीं।"

दार्शनिक और कामरेड अपने बाबू मित्र की बाँह थामे, लम्बे-लम्बे कदम रखते हुए उनके पीछे हो लिये। दार्शनिक ने भी ऊँचे स्वर में कहा—"सेठजी बात सच्ची कही आपने। जिनके डेरा-डण्डा कुछ नहीं, वे समाजवाद की फ़िक्र करते हैं और जिनके यहाँ पूँजी की गठरी धरी है, वे उससे डरते हैं और अहिंसा और प्रेम का प्रचार करते हैं। परन्तु सवाल यह है कि अधिक संख्या किन लोगों की है। कम लोगों की राय मानी जाय या अधिक लोगों की ?"

दार्शनिक अभी कुछ और भी कहना चाहते थे, परन्तु एक बड़ी दुकान में रेडियो का गाना होने लगा""पतली कमरिया उमरिया बारी""! उसके मुक़ाबिले में समाजवाद के नाम की आड़ में रोटी की पुकार कोई मन लगाकर सुनेगा, ऐसी आशा न थी। अपने बाबू मित्र से मूँगफली खिलाने का तक़ाज़ा करते हुए वे लोग पार्क के दूसरे दरवाज़े की ओर निकल गये।

---

३

## मनुष्यत्व का आधार या विनाश की सभ्यता

चक्कर क्लब के महावीरों को गरमी में बरसात और जाड़े से कम मुसीबत नहीं होती। हूँ! हूँ! करती, झुलसा देने वाली लू सभी तरह की आड़ में उनका पीछा कर उन्हें खदेड़ती फिरती है। वे खस और जवासे की टट्टियों की ओट ढूँढ़ते फिरते हैं, पंखों के नीचे सुखनिद्रा लेते सज्जन उनकी कांय-कांय से विच्छिप्त हो उन्हें हाँक देते हैं। उधर दो-चार दिन इन लोगों के मज़े में कट गये। एक चुनाव में कांग्रेस के टिकट पर खड़े होनेवाले एक उम्मीदवार अवारागर्दी कर सकने वाले इन देवताओं के प्रति उदार और सहृदय बन गये।

दुमंज़िले पर खस की टट्टी और बिजली के पंखे से जेठ को फागुन बना सकने वाले उनके कमरे में दुपहरिया बिता सकने की सुविधा इन लोगों को हो गई। भाड़ की तरह 'हूँ' 'हूँ' करते लखनऊ में ही मनुष्य द्वारा बनाये इस शिमले में शरण पा बहस का सुख पाने की आशा में सूर्य के ताप से शिलाजीत की तरह पिघलती तारकोल की सड़क पर कामरेड भगे चले आ रहे थे। पैरों में उनके रबरक्रेप के तले का, दस आने का, जूता और छतरी की जगह सिर पर अख़बार था। जान पड़ता था, लोहे की गरम सलाखें पैरों के तलवों से बिंधकर खोपड़ी में जा निकली हैं। उनके सिन्दूरी चेहरे और आँखों से, हीटर की तरह, गरमी की लहरें निकल रही थीं।

बिछी दरी के फ़र्श पर धम्म से बैठ, वे पैरों में चिपक गये जूते को खींचने लगे। जूते और जूता बनानेवाले के नाम एक वज़नी गाली उनके गले तक आकर रह गई। वजह यह कि हवा से उड़कर टेढ़ी हो गई, खिड़की पर लगी खस की टट्टी की राह, जहाँ से धूल भरी लू की फुफक कमरे में आ रही थी; उन्हें दिखाई दे गया, भीगी बोरियों से ढके ठेले को ढकेलता एक छोकरा जो दुमंज़िले की ओर देखकर चिल्ला रहा था—"ओला बरफ़ दो पैसे सेर !" कामरेड सोचने लगे ऐसी हालत में रबर के तले का जूता पहनना बेहतर है या नंगे पैर चलना।

ज़ीना चढ़कर कमरे में प्रवेश करते समय 'आओ आओ' कहकर उनका स्वागत हुआ था। उसका कुछ उत्तर उस परेशानी में वे दे न पाये। अब होश ठिकाने आने पर उन्होंने कहा—"भैया ग़रीब की सभी मौसिम में मौत !"

दार्शनिक और इतिहासज्ञ भी गान्धी टोपी धारी और दूसरे दो-एक सज्जनों के साथ उस छाया में काफ़ी देर से सुस्ता रहे थे। कामरेड के इस संकट में अपना उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—"जीवन कटता है साधनों से। सब साधनों का बीज है, पैसा-पैसा पास होने से तुम जूते के नाम पर यह धोखा पैर में क्यों फँसाते ? तुम आते इस समय ताँगे पर औंघाते हुए और उस छोकरे से आइसक्रीम लेकर खाते-खिलाते'''अच्छा अब कोने में धरी उस सुराही से पानी पी सकते हो !"

गांधी टोपी पहरे सज्जन ने राय दी—"इस समय यदि गुड़ का शरबत पियो तो लू और गरमी का असर दूर हो जाय।"

इतिहासज्ञ ने करवट बदल संशोधन पेश किया—"बरफ़ बिना शरबत का क्या मज़ा ?"—और उचक कर पुकार बैठे—"अबे ओ बरफ़ !"

कामरेड ने आशा से गृहपति की ओर देखा। परिस्थिति की मजबूरी समझ, दो पैसे इन्होंने निकाल दिये। चुनाव का मौक़ा ठहरा भीतर के दरवाज़े की ओर मुँहकर नौकर को चीनी लाने की भी आज्ञा

दी। बरफ़ आ गई। गिलास आ गया। बरफ़ का ठण्ढा शरबत बारी-बारी पिया जाने लगा।

झुलसी हुई चाँद में बरफ़ की ठण्ढक पहुँचने से कामरेड की जिह्वा चंचल हो उठी। ठण्डे गिलास का स्पर्श देर तक पाने के लिये बोले—"भाई वाह, बरफ़ भी क्या चीज़ है? यानी इस गरमी में, जब कि अंगारे बरस रहे हैं, हम बरफ़ पी रहे हैं। अजी साधन हों तो फिर साली गरमी क्या चीज़ है? यही कमरा ज़रा और बड़ा हो, ज़रा टट्टियों पर भी बरफ़ का पानी पड़े, पंखा चल रहा हो……!" उनकी आँखों में चैन की मस्ती आने लगी।

बर्फ़ानी शरबत की उत्सुकता में इतिहासज्ञ की जिह्वा बेचैन हो रही थी, बोले—"इतनी लम्बी कहानी कह रहे हो, क्यों नहीं कह देते, एयर कण्डीशण्ड मकान हो!…गिलास इधर बढ़ाइये, और लोग भी पियेंगे!……लेकर बैठ ही गये!"

गिलास इतिहासज्ञ के हाथ में चला जाता देख गांधी टोपी धारी सज्जन ने कहा—"परन्तु बर्फ़ होती है नुक़सान देह! चाहिये तो यह कि कुँये का जल हो, सुराही भरकर उसे रेत में दबा दिया जाय, ऊपर से छिड़क दिया जाय पानी। फिर देखिये, कितना ठण्डा जल होता है और सेहत के लिये भी अच्छा!"

इतिहासज्ञ एक सांस में आधा गिलास सटक कर बोले—"जी हाँ, बहुत अच्छा होता है; क्या कहना? अब इस कमरे में रेत का ढेर लगाकर मटका दबाने लायक़ जगह आप निकालिये? और फिर दिन भर आपको बाहर तो कहीं जाना नहीं, उसी मटके के गले में बांह डाले बैठे रहियेगा। क्योंकि जल जो आप उसी का पियेंगे! सीधे नहीं समझते कि मैशीन की बदौलत जहाँ चाहिये बर्फ़ की कंकरी से ठण्डा जल पी लीजिये! माना, ज़्यादा बर्फ़ गला पकड़ लेती है, पर मैशीन की सुविधा से आप इनकार नहीं कर सकते!"

"मैशीन ही ने तो सत्यानाश किय । और कर रही है ।"—गांधी टोपीधारी महाशय ने बल-पूर्वक कहा—"मैशीन की बदौलत ही तो सब ओर विषमता और अन्याय दिखाई देता है। कोई करोड़पति बना बैठा है, कोई टके का मज़दूर ! और देखिये, मैशीन और कल-कारखाने बढ़ जाने से उद्योग धन्दों का केन्द्रीकरण होता है। लाखों मज़दूर अपने परिवारों से दूर इकट्ठे हो जाते हैं। उनमें अनाचार और व्यभि-चार फैलता है। मैशीनों की बदौलत ही तो यह सब ग़रीबी और बेकारी तथा इतना संकट फैल रहा है। भारत में जब मैशीन नहा थी, सब ओर सुख शांति बरसती थी, रामराज्य था, कोई भूखा नहीं मरता था, दही-दूध की नदी बहती थी। अब यह हाल है कि सब ओर कंगाली ही कंगाली दिखाई देती है········"

इतिहासज्ञ शर्बत समाप्त करना भूल गये। शर्बत से अधिक चस्का उन्हें है बहस का। गिलास को गोद म रख वे बोले—"जी हाँ ठीक तो है, मैशीनो ही से तो कंगाली हो गई, पहले कहाँ थी ? महाभारत के ज़माने में द्रोणाचार्य जैसे विद्वान, जो कौरवों पाण्डवो के सैनिक विद्या-लय के आचार्य होने की योग्यता रखते थे, उनके पुत्र अश्वत्थामा को दूध न मिलने के कारण पानी में आटा घोलकर इसीलिये पिलाया जाता था कि भारत में उस समय दूध की नदियाँ बहती थीं और रबड़ी का कीचड़ होता था। और समानता भारत गें ऐसी थी कि बड़े लोग पालकियो पर सवार हो मनुष्यों के कंधे पर ढोये जाते थे। सवार और सवारी म समानता ही रामराज्य । अब मैशीन का रिवाज़ हो जाने से वैसा कम होता है। लोग प्रायः लोहे पर चढ़कर चलते हैं, इसलिये असमानता हो गई ? क्या तोता रटन्त बातें करते हो यार, आँखें खोल-कर देखो········यह बरफ़ ? मैशीन का आविष्कार होने से पहले इसे हम-तुम जैसो के फ़रिश्ते भी सुपने तक में कहीं पा नहीं सकते थे। सारे हिन्दुस्तान भर में दो-चार ख़ुशक़िस्मत होंगे, सम्राट् जहाँगीर या

उनके भाईबन्द, जिनके लिये कभी ओला बरसने पर फूस में छिपा, गढ़ों में दबाकर रक्खा जाता होगा या फिर हिमालय से ऊँटों और खच्चरों पर लदकर बरफ़ उनके लिये आता होगा, जिसे बड़े नाज़ से अर्गवानी शराब में मिलाकर बिल्लौरी प्यालों में चुस्का जाता होगा। और आज यह बर्फ़; सड़क पर पैरों तले कुचली जाती है।"—गोद में धरे गिलास की ओर दार्शनिक का हाथ बढ़ता देख उन्होंने उसे जल्दी-जल्दी पी डाला।

गिलास दार्शनिक के बजाय एक और ही सज्जन के हाथ पहुँच गया। निराशा प्रकट न होने देने के लिये दार्शनिक ने गांधीवादी सज्जन को सम्बोधन कर कहा—"अनाचार और अन्याय के लिये मैशीन को दोष देना बुद्धिमत्ता नहीं महात्माजी! मैशीन है क्या; एक औज़ार जिसे मनुष्य ने अधिक कारगर बना लिया है। उसका उपयोग मनुष्य इच्छा से ही होता है। वह जीवन निर्वाह का वैसाही साधन है जैसे खेत की भूमि। जिस व्यक्ति के हाथ में जीवन के साधन रहते हैं, वह जीवन के साधन से रहित मनुष्यों को सदा अपने लाभ के लिये काम में लाता है। इसके लिये मैशीन दोषी नहीं।"

गांधी टोपी धारी सज्जन आवेश में बोले—"क्यों साहब, जब मैशीन का रिवाज नहीं था, यह कल कारखाने और बड़ी-बड़ी मिलें न थीं, तब इस प्रकार शोषण कहाँ होता था? और न आपकी पूँजीवादी और समाजवादी झगड़े की हिंसा ही थी। मैशीन में हिंसा और लोभ की भावना काम करती है, उससे विषमता पैदा होती है। वास्तविक साम्यवाद तो उस रामराज्य में ही था।"

गांधीवादी महाशय की बात का उत्तर देने में कहीं वे पिछड़ न जायँ, इस भय से दार्शनिक शरबत के गिलास को जल्दी-जल्दी गले से उतार रहे थे। उनसे पहले ही इतिहासज्ञ बोल उठे—"रामराज्य में कैसा साम्यवाद था, यह तो आप जानते होंगे या जानते होंगे राम!

साम्यवाद और न्याय भगवान की प्रेरणा की तरह रूप बदलते रहते हैं। जैसे जल, जिस पात्र में डाला जायगा, उसी का रूप धारण कर लेगा ; लोटे में गया तो लोटे की शक्ल का और गिलास में गया तो गिलास की शक्ल का; वैसे ही भगवान की प्रेरणा और न्याय है। अंग्रेज़ कहते हैं, भारत में न्याय का राज्य है। भारत के बड़े-बड़े ज़मींदार और मिल मालिक कहते हैं, साम्यवाद ही तो है। साम्यवाद का अर्थ है, समता। इस ज़माने के क़ानून की नज़र में सब समान हैं। कोई भी क़त्ल करे फाँसी मिलेगी। जो कोई मुनासिब कीमत अदा करे, चाहे जो चीज़ ख़रीद सकता है........।"

एक और सज्जन ने टोक दिया—"परन्तु सब लोग क़ीमत अदा कर कहाँ से सकते हैं?........अरे जेब में क़ीमत हो तब तो!"

दार्शनिक ने उत्तर दिया—"अरे भाई यह क़ानूनी समता है। समता इस बात की नहीं कि सब के पास समान क़ीमत हो, समता यह है कि चाहे कोई भी हो, यदि कीमत नहीं दे सकता तो उसे कुछ नहीं मिलेगा! मौजूदा व्यवस्था के पक्षपाती कहते हैं, सबके साथ एक-सा व्यवहार है। जो चाहे, जहाँ चाहे, जैसा व्यापार रोज़गार कर सकता है, मेहनत मज़दूरी कर सकता है। क़ानून तो किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। जो जितना परिश्रम करता है, मज़दूरी पा जाता है।"

कामरेड ने टोका—"मेहनत करने वाला अपने परिश्रम की पूरी मज़दूरी कहाँ पाता है? वह तो मालिक खा जाता है!" उन्हें समझा कर दार्शनिक बोले—"अरे भाई परिश्रम का पूरा फल तो वह सामान हुआ जो मज़दूर पैदा करता है। हमारा मतलब है मज़दूरी से। मज़दूरी है, मेहनत करने वाले के शरीर का दिन भर का किराया, वह चाहे सोना खोदे चाहे कोयला! आपको मानना पड़ेगा कि क़ानून किसी से रियायत नहीं करता। किसी के साथ ज़बरदस्ती नहीं कि तुम फलां काम करो और तुम्हें ज़बरदस्ती इतनी ही मज़दूरी दी जायगी। यदि

कोई समझता है कि उजरत कम है, मज़दूरी न करे। क़ानून की समता से आप इनकार नहीं कर सकते। उसका असर चाहे जो हो? यह एक दौड़ है, जिसमें सबको समान रूप से दौड़ने का हक़ है। यह दूसरी बात है, कुछ लोग घोड़े पर चढ़कर दौड़ते हैं कुछ पैदल। यह व्यवस्था की खूबी है कि कुछ लोग घोड़े रख सकते हैं और कुछ नहीं। यह व्यवस्था आपको पसन्द न हो, पर यह क़ानून है! और आप इसे मानने के लिये तब तक मजबूर हैं जब तक आप इसे बदल नहीं देते!"

"यह क़ानून शैतानी क़ानून है"—गांधीवादी सज्जन गरज उठे—"हम जिस साम्यवाद और रामराज्य की बात करते हैं, जैसा कि भारत में था, वह दिखाने का नहीं परन्तु सद्भावना का क़ानून और साम्यवाद था।"

"सद्भावना का साम्यवाद?" इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया और बोले—"जी हाँ, ठीक ही तो फर्माया आपने! सद्भावना का साम्यवाद प्राचीन भारत में ज़रूर रहा होगा। भारत के धर्मात्मा लोग कहते थे—आत्मवत् सर्व भूतेषू····सब प्राणियों को, जीव जन्तुओं को अपने ही समान समझो, सबमें एक ही आत्मा है। यह कहने के बाद वे मज़े में घोड़े और हाथी पर सवारी गाँठते थे। कभी हाथी घोड़े को तो वे अपने कंधे पर बैठाते नहीं थे; या आपके ख़याल में रामराज्य में वैसा भी था?"

गांधीवादी सज्जन के समीप ही बैठे, श्वेत खद्दरधारी, हृष्ट-पुष्ट शरीर और गले में सोने की जंजीर पहने दूसरे सज्जन ने आगे बढ़ उत्तर दिया—"ऐसा करते होंगे तुम्हारे मार्क्स और लेनिन, या तुम्हारे रूस के साम्यवाद में जानवर आदमियों पर सवारी करते होंगे!"

इस उत्तर से इतिहासज्ञ साहब के चेहरे की मुस्कराहट काफ़ूर हो गई। चुप रहने का संकेत करने के लिये इनकी जाँघ पर हाथ रखते हुए दार्शनिक बोले—"देखिये साहब, मार्क्स और लेनिन को तो घोड़े

और हाथी सिर पर ढोने की ज़रूरत न थी। वे तो कहते नहीं कि सब जीव समान हैं। वे साम्यवाद का उपदेश भी नहीं देते। वे तो समाजवाद की बात करते हैं जिसका अर्थ है कि पैदावार के विशाल साधनों को व्यक्तिगत सम्पत्ति बना उन्हें व्यक्तिगत मुनाफ़े के लिये नष्ट न कर, सम्पूर्ण समाज का उन पर अधिकार हो। प्रत्येक व्यक्ति समाज का अंग है इसलिये उनका अधिकार उन साधनों पर समान रूप से है। साम्यवाद एक चीज़ है, समाजवाद दूसरी! साम्यवाद कहता है सब समान हैं पर वह समानता है कहाँ?......"

टोक कर गांधीवादी सज्जन ने पूछा—"मैशीनों से पैदा होने वाली प्रतियोगिता से पहले भारत में ऐसी विषमता न थी क्या आप इससे इनकार कर सकते हैं?"

इतिहास की साक्षी की बात आते ही इतिहासज्ञ बीच में कूद पड़े—"भारत में समता थी तभी तो राजा और सामन्त लोग पालकियों पर चढ़कर चला करते थे, दास-दासियों की सेनायें बड़े आदमियों के पीछे फिरा करती थीं, दान देने की इतनी महिमा थी। क्यों जनाब, जब सभी खुशहाल थे, समान थे, साम्यवाद था तो कोई किसी के दरवाज़े पर दान माँगने या दान स्वीकार करने जाता क्यों होगा? अगर समता और न्याय था तो उस समय के ठाकुरशाही क़ानून के अनुसार रहा होगा, जिसमें दास और सेवक का कर्त्तव्य था मालिक के हित के लिये मर मिटना। ऐसी क़ानूनी समता का दावा तो आज का क़ानून भी करता है।"

कामरेड बीच में बोल उठे—"दास सेवक और मालिक में समानता कैसे हो सकती है?" गांधीवादी सज्जन ने उन्हें उत्तर दिया—"जनाब उस समय सेवक और स्वामी का मतलब वह नहीं था जो आज है। उस समय उनमें पिता-पुत्र का सम्बन्ध था। उनके हित समान थे। स्वामी बल्कि अपने आपको दास का सेवक समझता था.......।"

"यह आपने एक ही कही"—इतिहासज्ञ बोल उठे—"यदि दास की सेवा ही करनी हो तो स्वामी को स्वामी बनने की ज़रूरत क्या ? यदि स्वामी और दास के हित समान हों तो एक स्वामी और दूसरा दास कैसे हो सकता है ? प्राचीन समय में यदि दासो का उपयोग करने और शोषण करने की प्रथा न होती तो 'स्वामी' और 'दास' यह दो शब्द ही न बनते। जिस वस्तु या भाव का अस्तित्व न हो, जिसका उपयोग न होता हो, उसके लिये शब्द ही न होगा। आप ही बताइये प्राचीन भारत की भाषा में सीने की मैशीन को क्या कहते थे; आइस-क्रीम को क्या कहते थे; रेल के गार्ड या चेचक का टीका लगाने के लिये कौन शब्द था ? जो बात या काम होगा शब्द उसी के लिये होगा। आप बताइये—"हाथ आगे बढ़ा यह बोले—"हुब्बम" शब्द का क्या अर्थ है ?"

आस-पास बैठे सभी लोग हैरान रह गये। यह शब्द पहले किसी ने न सुना था। "हम नहीं जानते—" गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया—"आप ही बताइये !"

अपने बढ़े हुए हाथ को पीछे खींच इतिहासज्ञ बोले—"जी—हुब्बम शब्द का कुछ अर्थ नहीं...क्योंकि वह किसी भाव को या वस्तु को प्रकट नहीं करता। क्या दास और स्वामी शब्द भी ऐसे ही निरर्थक हैं ? सेवक और मालिक शब्द स्पष्ट भावों को प्रकट करते हैं। जहाँ सेवक और मालिक होंगे, वहाँ समानता नहीं हो सकती, चाहे रामराज्य हो चाहे रावणराज्य ! और रामराज्य की अहिंसा का अर्थ होगा—सेवक और स्वामी के सम्बन्ध को बनाये रखना !"

"और आपके समाजवाद में सेवक नहीं रहेंगे, क्यों साहब ?"—सोने की जंजीर पहने सज्जन ने पूछा।

"नहीं रहेंगे, हरगिज़, नहीं रहेंगे !"—हवा में घूँसा मारकर काम-रेड गरज उठे।

"यानी अपना संडास साफ़ करने, कपड़े धोने, खाना पकाने, बर्तन माँजने के सब काम कामरेड लोग खुद ही किया करेंगे ? तो साहब आप अब ऐसा क्यों नहीं करते ?"—सोने की जंजीर पहने सज्जन ने कामरेड को सम्बोधन किया।

अब कैसे करें !"—कामरेड ने परेशानी से कहा—"समाजवाद में सब लोग मिल-जुलकर करेंगे।"

एक और ही सज्जन ने शंका की—"अरे भाई, जो कोई भी ऐसा काम करेगा, सेवक बन जायगा ! कहिये""""क्यों ?"

अवसर देखकर गांधीवादी सज्जन ने ऊँचे स्वर में उपदेश दिया—"तभी तो कहते हैं, भोगविलास की मौजूदा सभ्यता ने सब विषमता फैला दी है। यह सभ्यता शोषण के आधार पर खड़ी है। हमें अपने जीवन को सादगी की ओर ले जाना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये, अपनी आवश्यकतायें कम करे, अपना काम खुद हाथ से करे; यही आध्यात्मिक साम्यवाद है।"

चिकने हाथ-पैर, साफ़ कपड़े और चश्मा पहने एक और सज्जन बहस में शामिल हो बोले—"साहब कहने को तो आप भी ठीक कहते हैं और यह ( इतिहासज्ञ की ओर संकेत कर ) भी ठीक कहते हैं। परन्तु प्रश्न है कि क्रियात्मक रूप से क्या हो सकता है ? यदि आपके कहे अनुसार आवश्यकतायें कम करते जाइये तो जीवन में रह क्या जायगा ? पेट भर लेने और पेट खाली कर लेने के सिवा सभी बातें अनावश्यक हो जायँगी। जब कुछ करना ही नहीं, झंझट बढ़ाना नहीं, तो किसी बात पर विचार करना भी अनावश्यक हो जायगा। यदि मनुष्य को पशु की तरह रहने से ही शान्ति और सुख मिल सकता था तो क्या मनुष्य की बुद्धि का विकास अब तक उसका नाश ही करता आया ? मनुष्य के जीवन में यदि विकास और फैलाव न हो तो मनुष्य जिये किस लिये ? उसमें और पशु में अन्तर किस बात का रह जाय ?

यदि मनुष्य के जीवन में फैलाव और विकास होगा तो उसकी आवश्यकतायें बढ़ेंगी, अनेक प्रकार के काम होंगे, और उन्हें बाँटकर मनुष्यों को करना ही पड़ेगा। कुछ काम ऐसे हैं जिन्हें सेवा समझा जाता है परन्तु वे आवश्यक हैं, इससे आप इनकार नहीं कर सकते। कोई तो इन्हें करेगा ही·······?"—इन्हें जिज्ञासू और निष्पक्ष समझ किसी ने बीच में टोका नहीं।

इनकी बात पकड़ते हुए इतिहासज्ञ बोल उठे—"आपका कहना बिलकुल ठीक है। समाज के विकास के लिये समाज में सेवकों का होना आवश्यक था और आज भी ऐसे काम करनेवालों की ज़रूरत है, इसमें सन्देह नहीं। उस ज़माने में यदि गुलामों के परिश्रम का उपयोग न कर यदि सामर्थ्यवान अपने ही हाथ से कताई-बुनाई कर अपने ही हाथ से अपने लिये बैलगाड़ी गढ़ या झोंपड़ी थापकर गुज़ारा करने की क़सम खाये रहते तो न व्यापार ही पनपता और न कला का विकास होता। मनुष्य को चरने और अपना सिर छिपाने के काम से फ़ुर्सत न मिलती। न संगीत बनता, न गणित, न ज्योतिष और न आध्यात्मिक कल्पनायें गढ़ी जा सकतीं। न्याय के लिये जान देनेवाले विद्वान् अरस्तू का कहना है कि सभ्यता के विकास और रक्षा के लिये गुलामी की प्रथा आवश्यक है········।"

एक सज्जन टोककर पूछ बैठे—"तो फिर आपका यह समाजवाद और समानता का दावा केवल हवाई तोप ही रही·······।"

"आपका कहना ठीक है"—दार्शनिक ने उत्तर दिया—"यदि समता से मतलब हो गांधीवादी साम्यवाद का और उसके लिये अमीरों से यह प्रार्थना की जाय कि वे ग़रीबों पर दया करके उनके बराबर हो जायँ!" आस पास फूट उठने वाली हँसी से खिसियाकर सोने की ज़ंजीर वाले साहब ने ऊँचे स्वर में कहा—"नहीं तो आप सब ग़रीबों को अमीर बना लीजिये!"

"हाँ हम तो यही चाहते हैं।"—कामरेड ने अपने सीने पर हाथ मारा।

गांधीवादी सज्जन ने धैर्य से प्रश्न किया—"जब तक करोड़ों आदमी ग़रीब न होंगे, कुछ आदमी अमीर किस प्रकार बन सकते हैं ? जब तक आपकी सेवा के लिये सेवक न होंगे, आप आराम कैसे पा सकते हैं ?"

"हम तो इससे ठीक उल्टा देखते हैं साहब ! मैशीन है तो यह पंखा फर-फर चल रहा है, वर्ना एक आदमी को बाहर बैठकर पंखा खींचना पड़ता। कुछ आदमी पंखा खींचते और कुछ चैन करते, जैसा कि रामराज्य में होता था। अब यह है कि दूसरों को धूप में खड़ा किये बिना ही सभी लोग पंखे के नीचे बैठ सकते हैं। बिजली घर में बिजली का इंजन चलाने वाले भी पंखे के नीचे बैठे होंगे। यह मैशीन की ही कृपा है। अब पानी की गागर सिर पर लेकर कहार को चौथी मंजिल पर नहीं चढ़ना पड़ता। बिजलीघर और वाटरवर्क्स में बैठे आपका पंखा चलाने वाले या आपको पानी पहुँचानेवालों को आप अपना सेवक नहीं समझ सकते ! किसी का कोई काम करने से आदमी सेवक नहीं बन जाता। कोई भी आदमी सेवक बनता है, अपने जीवन निर्वाह के लिये दूसरे के कब्जे में आ जाने से और उसके परीश्रम का मूल्य दूसरे द्वारा निश्चय किये जाने पर ! इंजीनियर, डाक्टर और वकील आपका काम करते हैं और मुँह पर चाँटा मारकर दाम वसूल करते हैं ; वे आपके सेवक नहीं। परन्तु कहार और मेहतर आपके सेवक हैं। ज्यों-ज्यों मैशीन की शक्ति बढ़ती जायगी, सेवकों की संख्या घटती जायगी और समता तथा समाजवाद का अवसर·········।"

अपनी बात बीच में छोड़, खुली हुई खिड़की की ओर संकेत कर इतिहासज्ञ ने कहा—"वह देखिये आपकी अहिंसा·····"—धूप में पिघली तारकोल की सड़क पर ईंटों से भरा एक ठेला जा रहा था। पहियों के सड़क में गड़-गड़ जाने से गाड़ी खींचना भैंसे के लिये कठिन हो रहा

था और ठेले वाला भैंसे की पीठ पर तड़ातड़ चाबुक बरसा कर उसे गालियाँ दे रहा था—"क्यों साहब यदि इससे छः गुनी ईंटें भरकर लारी धड़धड़ाती हुई चली जाती तब तो हिंसा हो जाती न ?"""""क्यों ?"

"आपकी लारी और मेशीन हज़ारों-लाखों को बेकार कर देगी तो उनकी हिंसा होगी या नहीं ?"—गांधीवादी सज्जन ने पूछा।

"जी ?"—इतिहासज्ञ ने विस्मय से पूछा—"तो आप मेहतर से संडास साफ़ कराते हैं, कहार से पानी भराते हैं, रिक्शा की सवारी करते हैं कि ग़रीब कहीं बेकार न हो जाय, हिंसा न हो और फिर आप यह भी फ़र्माते हैं कि सब काम अपने ही हाथ से करने चाहिये, तब यह लोग बेकार होंगे या नहीं ?"

"यह तो मैशीन के व्यवहार के तरीक़े पर निर्भर करता है कि उससे पैदा किया धन किसके हाथ में जाय और लोग बेकार हों या न हों""।"—दार्शनिक कह रहे थे कि चश्माधारी सज्जन टोक बैठे—"देखिये सभ्यता के विकास के लिये आप ज़रूरी समझते हैं कि कला-कौशल का विकास हो, यहाँ तक कि उसके लिये आप ग़ुलामी की प्रथा तक को उचित बता गये तब फिर आप पूँजीवाद की निन्दा कैसे कर सकते हैं ?"

इतिहासज्ञ और दार्शनिक को दलील के शिकंजे में फँसा देख गांधीवादी सज्जन और उनके साथी प्रसन्नता से कान खड़े कर उस ओर देखने लगे। इतिहासज्ञ ने अपनी तर्जनी उँगली उठा और सेह के काँटों जैसे सिर पर सीधे खड़े बालों को हिलाते हुए कहा—"देखिये साहब, यह ग़लतफ़हमी हो रही है। हमने यह नहीं कहा कि ग़ुलामी की प्रथा उचित है। हमने यह कहा कि एक समय समाज में ग़ुलामी की प्रथा रहने से समाज को ऐसा लाभ हुआ। इसी प्रकार पूँजीवाद ने भी उद्योग-धन्दों को विस्तृत रूप देने में सहायता दी परन्तु अब वह अपना काम कर चुका, अब उसकी ज़रूरत नहीं।"

सोने की जंजीर पहने सज्जन हो-होकर हँसी में अपनी आँखें ऊपर

चड्ढा बोले—"वह तो एक ही बात है। जो वस्तु तब अच्छी थी, अब अच्छी क्यों नहीं।" उनकी इस हँसी का प्रभाव दूसरों के होठों पर भी फैलता देख इतिहासज्ञ चौंके और मकड़ी की टाँगों की-सी अपनी दुर्बल उँगलियों को हवा में नचाते हुए बोले—"ठीक है, साहब ठीक है, आपकी ही बात मानी। जब आपकी उम्र तीन-चार बरस की रही होगी, आपकी अम्माजी आपको बिना आसन की सुथनियाँ पहनाती होंगी, हाजत-रफ़ा का संकट आ पड़ने पर उससे आपको सुविधा रहती होगी, आजकल भी उसी तरह का पायजामा आपको पहनाया जाय?"

हँसी का प्रवाह पलट गया। गांधीवादी सज्जन बोले—"इस प्रकार का अश्लील मज़ाक आपको सभा मे नहीं करना चाहिए!" यह जान कर कि मज़ाक अश्लील था, सोने की जंज़ीर पहने सज्जन बिगड़ने लगे और इस बात के लिये तैयार हो गये कि अबकी इतिहासज्ञ ज़ुबान हिलायें तो वे उन्हें उठाकर खिड़की की राह बाज़ार में फेंक देंगे। दार्शनिक और चश्माधारी सज्जन के बीच-बचाव करने से वे बड़ी कठिनता से वे शांत हुए तो इतिहासज्ञ को अपनी बात कहने का मौक़ा मिला और उन्होंने कहा—

मनुष्य का जीवन सम्पन्न बनाने के लिये आवश्यकता है कि पैदावार अधिक से अधिक हो। पैदावार अधिक करने के लिये परिश्रम की आवश्यकता होती है। मनुष्य सदा से इस बात का प्रयत्न करता आया है कि उसके कम परिश्रम से अधिक फल निकले। इसीलिये उसने वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ने के बजाय लाठी से या ढेला फ़ेंककर फल तोड़ने का उपाय निकाला। जिस वस्तु की सहायता से मनुष्य के परिश्रम का फल बढ़ जाय, उसे हथियार या औज़ार कहते हैं। पशुओं को भी मनुष्य हथियार या औज़ार के तौर पर ही काम में लाता रहा है और अब भी लाता है। पशु दूध पैदा करने, सवारी करने और बोझ ढोने के हथियार हैं। इसी प्रकार ग़ुलामी की प्रथा में ग़ुलाम कहलानेवाले

मनुष्यों को हथियार समझा जाता था। उन्हें बोलते-हथियार या 'टाकिंग-टूल' कहा जाता था। उस समय के मालिक मज़दूर से मज़दूरी या नौकरी पर काम करवाने की अपेक्षा ख़रीदे हुए या किसी प्रकार ग़ुलाम बनाये हुए आदमी से काम करवाना और उसका पेट भरकर उसे जीवित रखना अधिक लाभदायक समझते थे। इसलिये उस समय ग़ुलामी की प्रथा का उपयोग था। परन्तु हथियारों में उन्नति होते जाने से मनुष्य के परिश्रम का परिणाम अधिक बढ़ने लगा। जिस काम के लिये पहले सौ आदमियों की आवश्यकता थी, उसी के लिये दस-बीस आदमी काफ़ी होने लगे तो मालिकों के लिये ग़ुलामों की सेनायें पालना लाभदायक न रहा। दूसरी ओर व्यापारियों को अपने कल-कारखानों में मज़दूरों की आवश्यकता होने लगी। इस रूप में ग़ुलामों की जगह ज़रूरत होने लगी मज़दूरों की और ग़ुलाम स्वतंत्र बनकर मज़दूर हो गये।"

"इस क़िस्से से इस समय क्या मतलब?"—चश्माधारी सज्जन ने टोककर पूछा—"प्रश्न तो यह है कि समानता........"

"आप सुनिये तो"—इतिहासज्ञ फिर बोले—"मतलब कहने का यह है कि मैशीन की उन्नति से समाज में ग़ुलामी का अन्त हो जाता है, सभ्यता की उन्नति होती है।"

इन्हें टोक दिया गांधीवादी सज्जन ने। अपने सिर की टोपी पंखे की तरह हिलाते हुए वे बोले—"सभ्यता की उन्नति इसे आप नहीं कह सकते! कला-कौशल की उन्नति आप बेशक कह लीजिये!"

इनका उत्तर दिया दार्शनिक ने—"क्यों साहब, इसे सभ्यता की उन्नति कैसे नहीं कहियेगा? कला-कौशल की उन्नति क्या मनुष्य की सभ्यता की उन्नति नहीं है? उस समय की याद कीजिये, जब मनुष्य हवा के झोंके, आँधी और जल की मामूली बौछार से अपनी रक्षा न कर सकता था। दस कोस परे की भूमि उसके लिये भयावना, अज्ञात देश थी। तीन मन का बोझ उठाकर ले जाना उसके सामर्थ्य के बाहर की

बात थी और आज वह दस हज़ार मील से बैठाकर बात करता है, सैकड़ों मन बोझ लेकर हवा में उड़ाता है, जल को स्थल और स्थल को जल बना देता है....।"

गांधीवादी सज्जन बोले—"परन्तु मनुष्य की इस बढ़ी हुई आसुरी शक्ति को क्या सभ्यता कहा जायगा ? आपकी इस सभ्यता या शैतानी शक्ति का ही यह परिणाम है कि मनुष्य आकाश में चढ़कर एक बम गिरा देता है और सैकड़ों पुरुष, स्त्रियाँ और बाल बच्चे बिलबिलाकर मर जाते हैं। आपकी इस सभ्यता और आसुरी शक्ति द्वारा लाभ उठाने की इच्छा का ही परिणाम है कि ध्वंसक तोपें और हवाई जहाज़ लेकर एक देश दूसरे देश पर आक्रमण करता है। यह पूंजीवाद और साम्राज्यवाद जिसके नाश के नारे आप लगाते हैं, मैशीन की इसी आसुरी शक्ति का परिणाम है। इससे छुटकारा पाये बिना मनुष्य का कल्याण नहीं। ऐसी नाशक सभ्यता की हमें आवश्यकता नहीं। हमें उस सभ्यता की आवश्यकता है जिसमें मनुष्य मनुष्य में सद्भाव हो। मनुष्य मनुष्य की सेवा करें। उनमें ईर्षा और वैरभाव न हो!"

दार्शनिक के घुटने को दबाकर बहस में आगे बढ़ने के लिये इतिहासज्ञ दूसरे हाथ से चुटकी का संकेत करते हुए बोले—"एक अर्ज़ है........मनुष्य की इस आसुरी शक्ति की जड़ है उसका दिमाग़ और यह दो हाथ। अगर इस दिमाग़ को पत्थर से कुचल दीजिये और इन दोनों हाथों को काटकर फेंक दीजिये तो सब आसुरी शक्ति समाप्त हो जाय!"

"क्या मतलब........?"—विस्मय से आँखें फैलाकर गांधीवादी सज्जन ने पूछा।"

"मतलब यह कि जिस हाथ से आप चरख़ा कातने का पुण्य कार्य करते हैं—इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया—"उसी हाथ से उठाकर शराब भी पी जाती है। जिस हाथ से सींक जलाकर किसी के छप्पर में

आग लगाई जाती है, वही हाथ पानी भरी बाल्टी उठा आग बुझा छप्पर को बचा भी सकता है। मतलब यह है कि मनुष्य की शक्ति बढ़ जाना भय और संकट का कारण नहीं होना चाहिये, मनुष्य की वह शक्ति जो विनाश का कार्य कर रही है, उसकी रक्षा और विकास का कार्य भी कर सकती है बल्कि इतिहास बताता है कि वह ऐसा ही करती रही है। मनुष्य में शक्ति और सामर्थ्य होने से ही उसके सद्भाव और सेवा भाव का भी मूल्य है, उसकी न्याय-बुद्धि का मूल्य है। उसके असमर्थ और निःशक्त हो जाने से उसकी सद्भावना और न्यायप्रियता का मूल्य क्या ?" जैसे भारतवासियों की अहिंसा·······?

एक और सज्जन बोले—"देखिये साहब, इस बात से तो इनकार नहीं किया जा सकता कि मैशीन पूँजीपति की शक्ति बढ़ा उसे शोषण करने का अवसर देती है ?"

दार्शनिक बोले—"साहब, शोषण मैशीन नहीं करती। शोषण करती है व्यवस्था ! जिस समय मैशीन थी, गुलामों का शोषण होता था। आज भी इस देश में ज़मींदार भूमि को अपनी सम्पत्ति बना लगान और बेगार द्वारा, और सूदखोर बनिये और ख़ान सूद द्वारा ग़रीबों का शोषण करते हैं, उसमें मैशीन की ज़रूरत नहीं पड़ती है। इस शोषण का मुक़ाबिला मैशीन का शोषण भी नहीं कर सकता। शोषण तो होता है इस कारण कि जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं को पैदा करने और प्राप्त करने के साधन एक छोटी-सी श्रेणी के हाथ में आ गये हैं। यह लोग साधनहीन लोगों को अपना पेट भरने के लिये उन साधनों का व्यवहार उसी हालत में करने का अवसर देते हैं जब कि साधनहीन लोग इस बात के लिये राज़ी हों कि मालिक से परिश्रम करने पर पैदावार का बड़ा भाग मालिक को ही दे देंगे। यह दूसरे का परिश्रम चूसना ही शोषण है।"

"बस यही तो हमारा साम्यवाद कहता है।"—गांधीवादी सज्जन

ने टोका—"और इसका उपाय यह है कि पैदावार के साधन इतने बड़े-बड़े न हों कि किसी को उनसे वश किया जा सके। वे छोटे छोटे हों जैसे चर्खा या घरेलू उद्योग धन्दे के औज़ार ! जिससे यह सम्भव ही न हो कि उद्योग-धन्दे और व्यापार एक छोटी-सी श्रेणी के हाथ में इकट्ठे हो सकें। सब लोग अपनी-अपनी आवश्यकता की वस्तु बनायें। फिर शोषण कैसे होगा ? अहिंसा का यही मार्ग है।"

इतिहासज्ञ फिर बोल उठे—"देखिये आप फिर वैसी ही बात करने लगे कि गाँव में आग लग जाने का भय है इसलिये कभी आग ही न जलाई जाय। इतना आप नहीं सोचते कि पैदावार के बड़े-बड़े साधन यह मैशीनें आकाश से टपक नहीं पड़ीं। अलादीन का कोई चिराग़ रगड़ देने से भी वे पैदा नहीं हो गईं। उन्हें बनाया तो मनुष्य ने ही है ! बनाया क्यों ? इसलिये कि मेहनत और पैदावार के साधारण उपायों से उसकी आवश्यकतायें पूरी न होती थीं। उसने मैशीन द्वारा पैदावार को बढ़ाने का उपाय निकाला। मनुष्य समाज के पीढ़ी-दरपीढ़ी हज़ारों वर्ष के अनुभव, खोज और प्रयत्न का यह फल है कि वह प्रकृति के सामने असहाय और विवश नहीं बल्कि जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि प्राकृतिक शक्तियों पर राज कर रहा है, उनका उपयोग मनुष्य समाज लाभ के लिये कर सकता है........।"

"लाभ हो तब न ?....हम तो देखते हैं कि सब ओर हानि ही हानि है !"—सोने की जंजीर पहरे सज्जन हाथ हिलाकर बोले।

"पहला लाभ तो यह है"—दार्शनिक ने उत्तर दिया—"आप यहां मज़े में लू और धूल से बचकर बिजली के पंखे के नीचे बैठे बरफ़ का ठण्डा शरबत पी मैशीन को गाली दे रहे हैं। मैशीन का विकास न होता तो लू के डर के मारे आप झाड़ियों में या किसी भिटे में सिर छिपाते फिरते या ईंटों से भरी भैंसागाड़ी हाँकते फिरते। गाड़ी रूपी मैशीन भी न होती तो ईंटें सिर पर ढोते ! उस समय आप प्राय

बचाते या उपदेश और तर्क करते ? उस समय हिंसा-अहिंसा और न्याय-अन्याय का चर्चा करने की बात आपको न सूझती। तब मैशीन को शैतानी शक्ति बताने वाले महात्मा लोग लाउडस्पीकर की मैशीन द्वारा मैशीन के विरुद्ध प्रचार न कर पातें ! जो लोग हिंसा को मिटाना उचित नहीं समझते, वे मैशीन की सहायता से मैशीन का विरोध कैसे करते हैं ?"

"नहीं साहब"—गांधीवादी सज्जन ने कहा—"महात्माजी तो अपने विचारों के प्रचार में मैशीन की सहायता लेना उचित नहीं समझते। उनका तो कहना है, मैशीन की सहायता से विचारों का प्रचार करने से उनमें पवित्रता नहीं रहती और उनकी शक्ति कम हो जाती है।"

"तो साहब मैशीन का उपयोग प्रचार में वे न किया करें, कोई ज़बरदस्ती उनसे थोड़े ही करता है ?"—कामरेड ने टोका।

कामरेड की बात की उपेक्षा कर दार्शनिक बोले—"महात्मा गांधी उचित चाहे जो कुछ समझते हों, परन्तु इस वास्तविकता से इनकार कोई नहीं कर सकता कि मैशीन मनुष्य जीवन का अनिवार्य और आवश्यक अंग बन गई है। मनुष्य बने रहना हो तो उसे छोड़ा नहीं जा सकता। बल्कि मनुष्य का मनुष्यत्व ही मैशीन में है।"

"मनुष्य का मनुष्यत्व मैशीन में है ?"—अत्यन्त आश्चर्य से आँखें फाड़कर गांधीवादी सज्जन ने विस्मय प्रकट किया—"मनुष्यत्व का मनुष्यत्व उसके गुणों में है, उसके धर्म में है या जड़ मैशीन में ?"

सोने की ज़ंज़ीर पहने सज्जन ने माथे पर हाथ मारकर कहा—"धन्य हैं आप ! मार्क्स और लेनिन के चेले ! मनुष्य का मनुष्यत्व आप लोहे-पत्थर में बताते हैं और फिर मनुष्य है क्या साहब ?"

आस-पास बैठे बहस को सुननेवाले लोगों के चेहरे पर भी अविश्वास की मुस्कान झलकने लगी, यहाँ तक कि कामरेड भी दार्शनिक की ओर विस्मय से देखने लगे कि क्या नई बात उनके वकील कह गये।

दार्शनिक बिलकुल स्थिर बने रहे। दोनों हाथों से श्रोताओं को धैर्य से बात सुनने का संकेत कर उन्होंने कहा—"मनुष्य केवल जीव है। मनुष्यत्व उसका है मैशीन में! दूसरे जीवों में और मनुष्य में अन्तर केवल यह है कि मनुष्य के पास मैशीन है। शेष किस बात में अन्तर है? प्रकृति का कौन काम—आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि पशु नहीं करता? बताइये! आप कहते हैं, पशु में धर्म नहीं? आप कैसे कह सकते हैं पशु में धर्म नहीं? हो सकता है, पशु पूजा करते हों! आप उनकी भाषा नहीं समझ पाते इसलिये अधिकार से कुछ कह नहीं सकते हो सकता है—वे शान्त बैठकर आर्य-समाजियों की तरह ईश्वर का ध्यान भी करते हों या ज़ोर से रम्भाते समय अल्लाहो अकबर की अज़ाँ देते हों? आप कहेंगे—वे पूजा नहीं करते, उनके यहाँ मंदिर नहीं। यह कमी उनके यहाँ केवल इसलिये है कि मंदिर बनाने के लिये उनके पास औज़ार, हथियार या मैशीन नहीं। पशु औज़ार और मैशीन बना नहीं सकते, मनुष्य बना सकता है। इसीलिये पशु, पशु है और मनुष्य, मनुष्य है।"

दार्शनिक ने देखा, लोग उनकी बात से यों चकित हो रहे हैं जैसे कोई जादू का खेल उन्होंने दिखा दिया हो। अपनी बात की ओर श्रोताओं का ध्यान देख वे और कहने लगे—"ऋषियों और महात्माओं ने मनुष्यत्व की जो पहचान बताई है, वह आप देख चुके। अब अगर एतराज़ न हो तो मार्क्स की भी बात सुन लीजिये। मार्क्स कहता है—"पशु अपने निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों को प्रकृति में जैसा पाते हैं, उनसे निर्वाह करते हैं। जैसी परिस्थितियाँ उनके चारों ओर होती हैं, उन्हीं में निर्वाह करते हैं। वे प्रकृति के आधीन रहते हैं। मनुष्य अपने निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों को प्रकृति से स्वयम उत्पन्न करता है। वह अपनी परिस्थितियों में बहुत कुछ परिवर्तन कर उन्हें अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बना लेता है। प्रकृति से अपनी

आवश्यकता की वस्तुयें पैदा करने का काम और परिस्थितियों को अपनी आवश्यकता के अनुकूल ढालने का काम किया जाता है औज़ारों और मैशीन मे। ऐसी अवस्था मे आप मैशीन को ही मनुष्यत्व का लक्षण मानेंगे या नहीं ?"

चश्माधारी सज्जन ध्यान से दार्शनिक की बात सुन रहे थे। सिर हिलाकर बोले—"बात है तो सोचने लायक !" इनकी बात समाप्त होने की परवाह न कर सोने की जंजीर पहने सज्जन बोले—"लेकिन प्रकृति को तो परमेश्वर ही बनाता है !"

"क्या सुबूत कि परमेश्वर बनाता है ?"—कामरेड ने गर्दन ऊँची कर पूँछ डाला।

"कोई भी बनाये प्रकृति को ! ईश्वर बनाये या शैतान"—दार्शनिक ने कुछ ताव में आकर कहा—"प्रकृति तो है ही उसमें पशु भी है और मनुष्य भी। हमें तो देखना है मनुष्यत्व किस बात में है ? किस राह चलकर मनुष्य अधिक सुखी और सशक्त बन सकता है और विकास कर सकता है ? परमेश्वर को आप बीच में क्यों लाते हैं ?"

गांधीवादी सज्जन के एक समर्थक बोले—"परन्तु परमेश्वर की इच्छा के बिना तो कुछ हो नहीं सकता !"

"हाँ तो यह सब अन्याय, अत्याचार और शोषण भी परमेश्वर की ही इच्छा से होता हो तो हमें उसकी कोई ज़रूरत नहीं। हम ईश्वर-विश्वास की दिमाग़ी गुलामी को मानने के लिये हरगिज़ तैयार नहीं !" हवा में घूँसा चलाते हुए कामरेड ने फिर कहा।

कृपाकर चुप रहने के लिये उनकी ओर इशारा कर दार्शनिक ने फिर कहना शुरू किया—"यदि ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता तो मैशीन भी उसकी इच्छा से ही बनी और उसका इतना विकास हुआ। आपके विचार के अनुसार यदि भगवान न चाहते तो मैशीन का विकास होता क्योंकर ? भगवान ने मैशीन में मनुष्य का हित

समझा तभी तो उसमें रुकावट न डाली। परन्तु गांधीवाद का ख्याल है कि जैसे—स्वर्ग का सुख भोगते हुए आदमी और हव्वा ने शैतान के बहकाने से, भगवान की इच्छा के विरुद्ध, गेहूँ का फल खा लिया और वह फल खाते ही आदम और हव्वा को ज्ञान हो गया कि वे तो नंगे हैं, लज्जा से वे अपने शरीर को छिपाने लगे। ज्ञान प्राप्त करने के इस अपराध के फल स्वरूप वे स्वर्ग से पृथ्वी पर आ गिरे और अब उनकी सन्तान मनुष्य समाज के रूप में सब संकट भोग रही है और भोगती रहेगी। प्रलय काल तक * उसी प्रकार जंगलीपन के स्वर्ग की सुख-शान्ति में रहते हुए मनुष्य समाज ने जब मैशीन के रूप में ज्ञान का फल चख लिया तो इस अपराध के फलस्वरूप आपके विचार में विनाशकारी सभ्यता ने उसे आ घेरा !"

दार्शनिक की बात से चारों ओर फूट पड़ी हँसी की चिन्ता न कर गांधीवादी सज्जन ने कहा—"मनुष्य की सभ्यता के आरम्भ से तो यह मैशीनें इस रूप में चली नहीं आ रहीं। इन्हें तो मनुष्य ने अपना लोभ पूरा करने के लिये बनाया है इसमें ईश्वर की इच्छा और रज़ामन्दी का क्या सवाल ?"

"अरे भाई, ईश्वर आँखें खोले देख तो रहे थे कि मनुष्य क्या-क्या कर रहा है, अपनी शक्ति को किस प्रकार बढ़ा रहा है।"—दार्शनिक ने पूछा—"पहले ज़माने में तपस्या द्वारा ऋषि लोग अपनी शक्ति बढ़ाने लगते थे तो देवता झटपट उर्वशी, रम्भा, मेनका किसी न किसी सुन्दरी को भेजकर उनकी तपस्या भंग करा देते थे कि कहीं मनुष्य भी देवताओं के समान सशक्त न हो जायँ। मैशीन द्वारा मनुष्य की शक्ति बढ़ाने का तो कोई विरोध देवताओं या भगवान की ओर से नहीं हुआ। इसे भगवान की इच्छा और आज्ञा के विरुद्ध क्यों कर समझा जाय ?"

---

* मनुष्य की पैदाइश के विषय में बाइबिल की कथा।

एक सज्जन जो अब तक बिना किसी उत्साह के बहस को सुने जा रहे थे, बोल पड़े—"यार इस ज़माने में भी अप्सरायें मैशीनें तोड़ने आयें तो मज़ा तो खूब रहे !"

"आने दो सालियों को ! आयें तो उन्हें थियेटर की स्टेज पर नचाया जायगा और सब लोग तमाशा देखेंगे ।"—कामरेड उत्साहित होकर बोले ।

"क्या बकते हो जी ?"—दो-तीन महाशयों ने कामरेड को धमकाया । परन्तु जिन सज्जन के चुनाव के लिये यह सब समारोह हो रहा था, उनके हित-चिन्तकों ने किसी को भी नाराज़ न करने के ख़्याल से मामला बढ़ने से पहले शान्त करा दिया !

इस विघ्न की कुछ परवाह न कर गांधीवादी सज्जन ने अत्यन्त गम्भीरता से कहा—"मैशीन की इस सत्यानाशी सभ्यता का फल मनुष्य को मिल कैसे नहीं रहा ? यह युद्ध में सौ-सौ मील तक मार करने वाली तोपें, आकाश से बम गिराकर लाखों मनुष्यों का संहार करनेवाले हवाईजहाज़, यह सब इस सभ्यता का दण्ड ही तो हैं । जब यह विध्वंसक मशीनें न थीं, मनुष्य का संहार इस प्रकार न होता था । यह युद्ध इस सभ्यता का दण्ड नहीं तो क्या है ? इसे सभ्यता नहीं असभ्यता ही कहना चाहिए ?"

इन्हें टोक कर इतिहासज्ञ बोले—

"क्यों साहब, यदि चर्खे के तकले से सूत न कातकर लोगों की आँखें फोड़ी जायें तो दोष किसे दीजियेगा ? या समझिये हल को पृथ्वी पर न चलाकर उसे मनुष्य के कलेजे पर चलाने लगिये तो हल को दोष दीजियेगा या नहीं ? मैशीन और साइन्स की शक्ति से बनी गैस को आप मनुष्य के लिये खाना पकाने, रोशनी करने, बोझ ढोने के काम में न ला उससे मनुष्यों की हत्या कीजिये तो क्या दोष मैशीन, साइन्स या गैस का है ? डाइनामाइट से पहाड़ तोड़कर मनुष्य के लिये

राह बनाने की अपेक्षा यदि उसे मनुष्यों की पीठ पर आप चलाने लगें तो दोष डाइनामाइट का नहीं आपकी बुद्धि का होगा ?"

गम्भीर स्वर में गांधीवादी सज्जन ने कहा—"परन्तु ऐसी सत्यानाशी वस्तुओं को मनुष्य उन्नति दे क्यों ?"

"यह भी आपने एक ही कही"—इतिहासज्ञ ने दोनों हाथ हिलाकर कहा—"जबसे मनुष्य ने हथियार बनाये हैं, सभी हत्याएँ उसने बर्छे, तलवार, गोली के रूप में लोहे से की हैं। आप कहेंगे मनुष्य लोहा न बनाता तो यह सत्यानाश होता ही क्यों ? परन्तु महात्माजी, लोहा न होता तो चर्खा और तकली भी न बनती और सूत कातकर आत्मिक उन्नति का मार्ग भी न खुलता। जानते हैं आप यह लोहा ही मैशीन का बीज था...."

दार्शनिक कहने लगे—"इन युद्धों से थोड़े या बहुत आदमी मरते हैं यह तो माना जायगा परन्तु इन युद्धों से इस सभ्यता का नाश हो रहा है, यह नहीं माना जा सकता। पिछले युद्ध में क्या नहीं हुआ ? परन्तु उसके बाद मैशीन का और भी अधिक विकास हुआ। इस युद्ध के बाद भी वही होगा ! युद्ध की संकटमय परिस्थिति मनुष्य समाज की व्यवस्था के अन्तर विरोधों के कारण पैदा हो जाती है। संकट में अपनी रक्षा के लिये मनुष्य को अपनी शक्ति और अधिक बढ़ानी पड़ती है।"

"आपका मतलब है युद्ध होने चाहिए ?"—चश्माधारी सज्जन ने विस्मय से पूछा।

"नहीं यह बात नहीं"—दार्शनिक ने उत्तर दिया—"युद्ध न हों तो मनुष्य समाज सैकड़ों गुना अधिक सम्पन्न और सुखी हो जाय। परन्तु युद्ध मैशीन की वजह से नहीं होते। युद्ध होते हैं मनुष्य समाज की ग़लत व्यवस्था की वजह से। मैशीन का दोष इतना ही है कि वह मनुष्य समाज की शक्ति को सैकड़ों गुना बढ़ाकर मनुष्य समाज के विकास की रफ़्तार को तेज़ कर देती है और होनेवाले युद्धों को अधिक

भयंकर रूप दे देती है। इसके साथ ही मनुष्य का बहुत कल्याण करने की शक्ति भी तो उसमें है। हवाई जहाज़ों का विकास पिछले युद्ध में मनुष्यों का संहार करने के लिये हुआ था परन्तु वही हवाई जहाज़ सवारी और डाक का काम देने लगे। रूस में वे खेती और स्वास्थ्य रक्षा की सार्वजनिक सेवा के काम आने लगे। जब तक मनुष्य का विकास होगा, मैशीन का विकास होगा।"

इतनी देर तक दार्शनिक के बोलते रहने से इतिहासज्ञ चुप बैठे व्याकुल होने लगे थे। सहसा वे बोल उठे—"हम बतायें साहब, मैशीन की विनाशकारी सभ्यता का नाश किस तरह होगा ?"—गांधीवादी और सोने की ज़ंजीर पहने सज्जन की ओर हाथ जोड़ उन्होंने कहा—"यदि गुस्ताखी मुआफ़ हो तो !" और बोले—"देखिये गीता में लिखा है—जब-जब धर्म का नाश होता है और पाप की बढ़ती होती है, संतों की रक्षा के लिये और दुष्टों का नाश करने के लिये भगवान अवतार लेते हैं। सो अब मैशीन रूपी पाप बहुत काफ़ी बढ़ गया है और महात्मा गांधी ने अवतार धारण किया है उसका नाश करने के लिये। अब मैशीन का नाश होकर पशु-वंश का राज होगा। सब प्रकार की मैशीन, औज़ारों और हथियारों का नाश होकर सब काम हाथ-पाँव से किये जायँगे। मनुष्य पाप छोड़ पशु धर्म ग्रहण कर पृथ्वी पर उगी घास को चरेंगे और तालाब में मुँह लगाकर जल पियेंगे। इससे पृथ्वी पर धर्म, समता और शान्ति हो जायगी।"

सब लोग कहकहा लगाकर हँस पड़े। उस हँसी से विचलित न होकर गान्धीवादी सज्जन ने कहा—"गान्धीवाद सभी प्रकार की मैशीनरी, औज़ारों और हथियारों का विरोध नहीं करता। गान्धीवाद विरोध करता है केवल बड़ी-बड़ी मैशीनरी का जैसे मिलें और कारखाने आदि। जिनसे उद्योग-धन्दे कुछ इने-गिने व्यक्तियों के हाथ में आकर केन्द्रित हो जाते हैं, और विषमता या बेकारी फैलती है। यों तो ग्रामोद्योग

और घरेलू धन्दों में भी औज़ार और हथियार काम आते हैं ; चरखा भी तो एक मैशीन ही है। आपके कहे मुताबिक तो कुल्हाड़ी, खुरपी और लाठी भी मनुष्य की शक्ति को बढ़ानेवाली मैशीनें हैं। गान्धीवाद उनका विरोध नहीं करता।"

"यही तो जनाब विचित्र बात है कि गांधीवाद मैशीन का विरोध नहीं भी करता और करता भी है।" दार्शनिक बोले—"इसका मतलब यह होता है कि एक खास हद तक या दर्जे तक जब तक कि मैशीन की शक्ति उसके विचार में बहुत न बढ़ जाय, गान्धीवाद उसे अच्छा समझता है, उस सीमा के आगे नहीं। अर्थात् गांधीवाद के अनुसार मनुष्य को एक सीमा तक ही विकास करना चाहिये उसके आगे नहीं। लेकिन यह सीमा गांधीवाद किस मतलब से निश्चित करता है? मनुष्य या संसार की कोई भी वस्तु किसी स्थान पर पहुँचकर भी निश्चल, स्थिर या गतिहीन नहीं हो सकती। गति जीवन का गुण है। गति तो होगी ही। यदि आगे की ओर नहीं होगी तो पीछे की ओर होने लगेगी। मनुष्य समाज-विकास नहीं करेगा तो उसका विनाश और पतन होने लगेगा। मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य बढ़ना ही सामाजिक रूप से उसका विकास है।"

"हाँ साहब"—चश्माधारी सज्जन गान्धीवादी सज्जन की ओर देख कर बोले—"यह बात समझ में नहीं आती कि एक ख़ास हद तक आप मैशीन को उपयोगी समझते हैं और बाद में हानिकारक। सिद्धान्त तो एक ही है, मैशीन हो या औज़ार, वह मनुष्य द्वारा बनाया, मनुष्य को बढ़ाने का उपाय ही तो है न? फिर उसे जितना बढ़ाया जाय उससे मनुष्य समाज का कल्याण ही होना चाहिये!"

गान्धीवादी सज्जन ने अहिंसात्मक रूप से कुछ उत्तेजित होकर कहा—"अजी हाथ कंगन को आरसी क्या? देखते नहीं हैं आप? इन मिलों और कारखानों में सैकड़ों आदमियों का काम मैशीन की

सहायता से एक आदमी करता है ? उससे जनता का धन खिंच खिंच कर कुछ थोड़े से आदमियों के हाथ में इकट्ठा हो जाता है। दूसरे लोग साधनहीन और कंगाल हो जाते हैं। जब मैशीन से दस आदमी का काम एक आदमी करेगा तो बेकारी भी हुए बिना नहीं रह सकती। मैशीन बहुत थोड़े समय में बहुत सा काम कर डालेगी तो शेष समय लोग बेकार रहेंगे और खुराफ़ात करेंगे, पाप और अनाचार फैलेगा। यह सब कुछ हमें प्रतिदिन समाज में दिखाई दे रहा है। इसमें समझने न समझने की बात क्या है ? ऐसी अवस्था में समानता और शान्ति हो कैसे सकती है ?"

"यदि मैशीन मनुष्य की शक्ति बढ़ा देती है तो इससे मनुष्य के लिये भयभीत होने का कोई कारण नहीं।"—इतिहासज्ञ गम्भीरता से बोले—"ज़रूरत इस बात की है कि मनुष्य को अपनी बढ़ी हुई शक्ति के उपयोग का अवसर मिले। यदि मैशीन की सहायता से एक आदमी दस आदमियों का काम कर सकता है तो नौ आदमियों को बेकार और भूखा रहने की ज़रूरत नहीं। बचे हुए नौ आदमी दूसरे नौ काम कर सकते हैं। आप यह भी तो देखते हैं कि समाज के सभी लोगों की सभी आवश्यकतायें पूरी नहीं होतीं और फिर भी आदमी बेकार बने रहते हैं ? क्यों न समाज में प्रत्येक मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता पूर्ण हो ? क्या वजह है जिन वस्तुओं का व्यवहार आज दिन केवल बड़े लोग करते हैं, वे इस मात्रा में पैदा न की जायें कि सभी लोगों के लिये काफ़ी हों ? इस प्रकार वस्तुओं का बँटवारा होने पर सभी चीज़ों की सैकड़ों गुना अधिक पैदावार करना ज़रूरी होगा। आज जो आपको अधिक पैदावार हो जाने के कारण मालगोदाम और कोठियाँ भरी दिखाई देती हैं, यह सब धोखा है। इन वस्तुओं को फ़ालतू पैदावार तो तब समझा जाय जब कि समाज के ज़रूरतमन्दों की ज़रूरत पूरी करने के बाद भी यह सामान बचा रहे। आज दिन यह सामान फ़ालतू

पैदा हो गया इसलिये जान पड़ता है क्योंकि सामान ज़रूरत मन्दों के उपयोग के लिये नहीं, बल्कि मुनाफ़े पर बिक्री के लिये पैदा किया जाता है। बिक्री हो नहीं पाती क्योंकि मुनाफ़ा कमाने वाले पूँजीपति अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिये मेहनत करने वाले मज़दूरों को कम-से-कम पैसा सामान तैयार करने की मेहनत में देते हैं। जब मेहनत करनेवाला अपनी मेहनत का पूरा मूल्य नहीं पायेगा तो अपनी मेहनत से तैयार सामान को ख़रीदेगा कैसे? ऐसी हालत में बिक्री न होने की शिक़ायत कर दूसरे मेहनत करने वालों को भी काम से बर्ख़ास्त कर दिया जाता है। मतलब यह कि ख़रीद सकने वालों की तादाद घटती जाती है परन्तु पैदा करने की ताक़त मैशीन में उतनी ही है या और बढ़ती जाती है। पैदावार को खरीद सकने की ताक़त को तो पूँजीपति मेहनत करने-वालों से छीनकर अपनी जेब में भर लेता है। ज़रूरत इस बात की नहीं कि मैशीन की पैदावार घटाई जाय। इससे ख़रीदनेवाले की ताक़त नहीं बढ़ जायगी। जब पैदावार ही कम हो जायगी तो वह खरीदेगा क्या? इससे उसकी भूख और कंगाली नहीं मिटेगी। ज़रूरत है इस बात की कि उसकी मेहनत का पूरा फल मेहनत करनेवाले को मिले ताकि स्वयम् तैयार किये सामान को या उसके बराबर मूल्य के पदार्थ को वह ख़रीदकर खर्च कर सके।

"आप एक क्षण के लिये मान ही लिजिये मैशीन द्वारा कम मेह-नत से अधिक पैदावार हो सकती है। ऐसी अवस्था में क्या ज़रूरत कि मेहनत करने वालों को दस या बारह घण्टे काम पर जोता जाय? मेहनत करने वालों से केवल छः घण्टा चार घण्टा काम कराया जाय। शेष समय वे खेल-कूद, पढ़ने-लिखने में खर्चकर इन्सान होने का कुछ सुख उठायें। आप जैसे सज्जन चाहें तो आध्यात्मिक चर्चाकर, समाधि लगाकर बैठ सकते हैं। मैशीन की शक्ति तो मनुष्य की सेवक है। प्रश्न है कि उसे किस उद्देश्य से किस काम में लगाया जाता है।"

इतिहासज्ञ थक कर चुप होना ही चाहते थे कि एक और साहब जो कुछ कारोबारी ढंग के जान पड़ते थे, बोले—"साहब यों तो कांग्रेस की बात ठीक ही है परन्तु यह समझ में नहीं आता कि मिलों और कारखानों में दस-बारह आना मज़दूरी पा सकने वाले मज़दूरों को छः पैसे-दो आने के कारोबार करने का उपदेश क्यों दिया जाता है ? लोग अगर छः पैसे-दो आने कमाई के रोज़गारों में लग जायँगे तो साहब देश का रहा-सहा रोज़गार भी चौपट हो जायगा। अरे साहब लोगों को कमाई ही नहीं होगी तो कोई ख़रीदेगा काहे से और कोई पैदा क्या करेगा ?"

इनकी बात से एक और सज्जन का साहस बढ़ा। वे बोले—"जी ! अगर सचमुच ही मिलों और कारखानों को छोड़कर ग्रामोद्योग धन्दे पर ही लोग आ टिकें तो होगा क्या ? सैकड़ों रोज़गार बन्द हो जायँगे। यह समझ लीजिये कि ४०—५० लाख मज़दूर बेकार हो जायँगे और अपने गाँवों को दौड़ेंगे। गाँव में यह लोग करेंगे क्या ? वहाँ कौन धन्दा है ? रेल का पहिया बनायेंगे, लोहे के गर्डर ढालेंगे या शक्कर और कपड़े की मिल चलायेंगे ? खायेंगे कहाँ से ? खेती करने को कहो तो अभी फ़िलहाल ही गाँवों में खेती की ज़मीन नहीं मिलती। ज़मीन के लिये वह मारोमार है कि लगान पर लगान चढ़ रहे हैं। अरे भाई किसान अपनी जमीन से पेट भरने लायक अनाज तो पैदाकर नहीं पाता। चाहिये तो यह कि नये-नये कारोबार खुलें, यहाँ कहते हैं गाँवों को चलो !"

सब ओर से शंकायें उठती देख गान्धीवादी सज्जन ने कहा—"यह तो हम कहते नहीं कि सब मिलें एकदम बन्द कर दी जाँय। मिलें भी चलें और बेकार लोग घरेलू धन्दे भी करें। मैशीन को और आगे बढ़ाना ठीक नहीं बल्कि हो सके तो मिलों के कारोबार को छोटे उद्योग धन्दों का रूप देते जाना चाहिये !"

कारोबारी सज्जन ने फिर शंका की—"जनाब यह हो नहीं सकता। घण्टे भर में हज़ारों कीलें बना देनेवाली मैशीन के मुक़ाबिले में आप दिन भर खुट्ट-खुट्ट करके चालीस कीलें पीट लेंगे तो वह बाज़ार में ठहर नहीं सकतीं। आप चालीस कीलों के लिये माँगेंगे आठ आने! अरे कुछ तो पेट में डालियेगा? और मैशीन वाला आठ आने में देगा दो सौ कील। दिन भर में वह बनायेगा दस हज़ार कील। उसे सौ कील पर इकन्नी मुनाफ़ा बहुत कहिये·········?"

बहस में बिलकुल कारोबारी रंग आता देख इतिहासज्ञ बोले—"आप मैशीन की मुसीबत का इलाज बताते हैं घरेलू उद्योग धन्दे? मानो मैशीन से बढ़कर कोई नया आविष्कार कर रहे हों। घरेलू धन्दे तो पहले मौजूद थे ही, मैशीन के सामने वे टिक न सके। जब घरेलू धन्दों के जमे जमाये पैर मैशीन के आगे उखड़ गये तो अब जब कि मैशीन के पैर जम चुके हैं, घरेलू उद्योग धन्दे कैसे स्थान पा सकते हैं? आप ही बताइये पैदावार को बढ़ती के ढंग की ओर जाना चाहिये या घटती के ढंग की ओर?"

गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया—"पैदावार का उद्देश्य तो मनुष्य समाज का कल्याण ही है न! जब मैशीनों के उपयोग से मनुष्य समाज की अधिक संख्या के लिये कल्याण न होकर दुख, अशान्ति, कलह और कंगाली ही होती है तो उसे चिपटाये रखने से क्या लाभ? ऐसी अवस्था में हमें हाथ की दस्तकारी का ही आसरा लेना चाहिये ताकि अधिक संख्या का शोषण न हो सके और पूँजीपतियों, ज़मीन्दारों तथा पैदावार के दूसरे साधनों के मालिकों को समझाना चाहिये कि उनके पास जो सम्पत्ति है वह सर्वसाधारण जनता की है। उसका उपयोग निजी खर्च के लिये करना पाप है। जब तक पूँजीपतियां और पैदावार के साधनों के मालिकों का हृदय परिवर्तन न हो जाय, शोषण और कंगाली को रोकने का एक ही उपाय है कि हाथ की दस्तकारी का

आसरा लिया जाय। समता और साम्यवाद हो सकता है त्याग, सेवा और अहिंसा की भावना से। जनता के सेवक को चाहिये कि ग़रीबों की ही तरह रहकर उनकी सेवा करे।"

"क्यों साहब"—कामरेड ने पूछा—"अगर ग़रीब जनता की ही तरह कमर में अँगोछा लपेट कर हम भी रहने लगें तो इससे उन्हें क्या लाभ होगा? इससे जनता की कंगाली और ग़रीबी तो दूर हो नहीं जायगी। अगर सभी लोग ऐसे रहने लगेंगे तो वस्तुओं की माँग घटने से पैदावार और कम होगी और बेकारी अधिक फैलेगी। ग़रीबों की सहायता आप करना चाहते हैं तो जिस चीज़ की ज़रूरत उन्हें है वह उन्हें दीजिये; न कि जो कुछ आपके पास है और जिसे छोड़ देने से ग़रीबों को कोई लाभ नहीं उसे छोड़ साधु बन के दिखाइये। इसमें लाभ?"

"इससे ग़रीब को लाभ बेशक न हो"—इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया—"परन्तु त्याग करनेवाले महात्मा का आदर तो बढ़ता है। उसका किया खरा-खोटा सब सही हो जाता है। आप जब कहते हैं कि पूँजी-पतियों और ज़मीन्दारों के पास जमा धन और पैदावार के साधन उनके निजी उपयोग के लिये नहीं हैं, वे यदि उन्हें निजी उपयोग में खर्च करें तो पाप होगा, तो फिर क्या कारण कि आप यह धन उनके कब्ज़े में रहने देकर समाज की हानि करें? क्यों न इस धन को उनसे लेकर इस प्रकार उपयोग में लाया जाय कि समाज के लिये पैदावार बढ़े और नये उद्योग धन्दे चलें? मैशीन से जब हमें लाभ हो सकता है तो हम उसे क्यों छोड़ें। कंगाली का इलाज हाथ की दस्तकारी नहीं। उससे तो ऐसी कंगाली होगी कि मौजूदा शोषण से भी बुरी हालत! शोषण को रोकने और समता का उपाय त्याग द्वारा हाथ की दस्तकारी को अपनाना नहीं बल्कि समाजवाद है। समाजवाद का अर्थ सबको एक समान कंगाल और ग़रीब बना देना नहीं, जैसा कि आपके साम्यवाद का अर्थ है। समता का नाम लेकर आप जनता को लुभाना चाहते हैं परन्तु सम्पत्ति

पर समाज के अधिकार की बात सुनते ही आपको हिंसा दिखाई देने लगती है। समाजवाद का अर्थ है, सब लोगो को रोज़ी कमाने का समान अवसर हो और सब लोग अपने परिश्रम का पूरा फल पा सकें। यह तभी हो सकता है जब पैदावार के साधनो पर सभी व्यक्तियों को समान अधिकार हो, वे सम्पूर्ण समाज की सम्पत्ति हो। मैशीन की बढ़ी हुई शक्ति उसे सामाजिकता की ओर ले जाती है।"

इतिहासज्ञ की बात को स्पष्ट करने के लिये दार्शनिक बोले—"मैशीन से पैदावार का सरंजाम इतना विस्तृत और फैला हुआ होता है कि उसे एक व्यक्ति चला नहीं सकता। उसे सामूहिक रूप में या सामाजिक रूप में ही चलाना पड़ता है। मैशीन से होने वाली पैदावार को भी एक ही व्यक्ति उपयोग में नहीं ला सकता। ऐसी अवस्था में उसे एक व्यक्ति की सम्पत्ति बनाकर उसे उपयोग में लाते समय या उसकी पैदावार को खर्च करते समय, एक व्यक्ति की राय या मुनाफ़े का ख़याल करना एक अस्वाभाविक सी बात है। जिस समय पैदावार के साधन एक व्यक्ति द्वारा उपयोग में लाये जा सकते थे और उनकी पैदावार का मूल्य भी एक ही आदमी के निर्वाह लायक होता था, इन साधनों का एक व्यक्ति की सम्पत्ति होना स्वाभाविक था। परन्तु इस समय जब मैशीन से पैदावार का काम सामाजिक रूप से होता है, उसकी पैदावार का खर्च भी सामाजिक रूप से होता है, उसे एक व्यक्ति की मिल्कियत में घुसेड़ने का प्रयत्न अस्वाभाविक है। इससे न तो मैशीन ठीक से पैदावार कर सकेगी और न उसकी पैदावार का खर्च ही ठीक से हो सकेगा। फिर आप शिक़ायत करते हैं कि मैशीनों के उपयोग से बेकारी होती है, शोषण होता है, विषमता आती है, आर्थिक संकट आता है। अरे भाई आयगा नही तो होगा क्या? आपकी सवारी मैशीन की चाल तेज़ है। आप उसके पैरों मे डाल दें व्यक्तिगत मिल्कियत का फ़न्दा और ऊपर से उसे भगाने के लिये लगायें हंटर, तो मुँह के बल

गिरियेगा कि नहीं ? सीधा उपाय है, पैदावार के बड़े-बड़े साधनों को सामाजिक सम्पत्ति बना देना, सो आपको मंजूर नहीं। उसमें आपको हिंसा दिखाई देती है परन्तु शोषित होनेवाली करोड़ों जनता पर होने वाली हिंसा आपको दिखाई नहीं देती.......।" दार्शनिक जोश में कहते चले जा रहे थे।

इन्हें टोक गांधीवादी सज्जन बोले—"आप चाहते हैं कि हिंसा का इलाज हिंसा से हो ? एक श्रेणी की हिंसा हटी दूसरी श्रेणी की हिंसा होने लगी। इससे लाभ ?"

इस प्रश्न से दार्शनिक उत्तेजित हो उठे—"व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रथा ही आप की दृष्टि में न्याय और अहिंसा है। इससे आपको इतना मोह है कि उसकी रक्षा के लिये आप मैशीन द्वारा हो सकनेवाले समाज के कल्याण और विकास को हाथ की दस्तकारी के नाम पर बलिदान कर देने के लिये तैयार हैं। मैशीन का विरोध आप इसीलिये करते हैं कि मैशीन का विकास, उसकी बढ़ी हुई शक्ति व्यक्तिगत मिल्कियत के दायरे में समा नहीं सकती। वह व्यक्तिगत अधिकार को सहन नहीं कर सकती। मैशीन को चलाइये तो वह हज़ारों को हाथ देने के लिये पुकारती है और जब पैदावार करती है तो हज़ारों-लाखों के लिये। वह हज़ारों-लाखों मज़दूरों को एक साथ इकट्ठा कर एक दुर्दम शक्ति बना देती है। मैशीन के उपयोग से व्यक्तिवाद के लिये स्थान नहीं रहता। वह समाजवाद का आधार है। मैशीन की बहुत अधिक उन्नति हुए बिना समाजवाद हो नहीं सकता इसलिये आप उससे डरते हैं। आप मैशीन को तब तक पसन्द करते हैं जब तक कि वह चर्खे के रूप में एक व्यक्ति के कब्ज़े में रहने के लिये तैयार है। यह व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रणाली आपके रामराज्य और ठाकुरशाही सामाजिक व्यवस्था की जान है। समाज के विकास में इसे कुचले जाता देख आपका हृदय भय से हिंसा-हिंसा पुकार उठता है।"

अपनी इस वक्तृता का प्रभाव श्रोताओं पर जाँचने के लिये दार्शनिक ने चुप होकर चारों ओर देखा। उनके यों चुप होने के अवसर का लाभ उठाकर इतिहासज्ञ बोल उठे—"भैया, इनकी हिंसा-अहिंसा का यह हाल है कि गौ सगी माता है, उनके दर्शन से पुण्य होता है। उनका दूध पीना हिंसा है। बकरी बेचारी सौतेली है। दूध पीना ही है तो उसका पीलो। सो समाज में हिंसा होनी ही है तो ठाकुरों, सेठों की तो न हो, वे दान पुण्य करते हैं, भगवान की दया से वे भागवान बने हैं, उसके प्यारे हैं और भले ही जिसकी हो····"

सहसा सब लोगों को एक दरवाजे की ओर नज़रें घुमाते देख इतिहासज्ञ ने देखा कि चुनाव के उम्मीदवार सज्जन हाथ में बहुत से काग़ज़ पत्र लिये प्रवेश कर रहे हैं।

उन्हें देख आदर की मुस्कराहट से गांधीवादी सज्जन ने कहा—"अब कुछ काम की बात हो, बस कीजिये इस बहस को।"

यह सुन दार्शनिक ने इतिहासज्ञ की ओर देखा मानो पूछ रहे हों- -"क्या अब तक यह सब बेकाम की ही बात हो रही थी?" कामरेड की ओर नज़र जाने पर मालूम हुआ कि गांधीवादी सज्जन की इस सहृदयता से उनके नेत्र लाल हो रहे हैं और मानो वे फट पड़ना चाहते हैं। समय रहते ही इतिहासज्ञ ने होठों पर उँगली रख उन्हें चुप रहने का संकेत कर दिया। उन्हें शायद अभी एक गिलास बरफ का ठण्डा जल और मिलने की आशा थी।

४

## स्त्रियों की स्वतंत्रता और समान अधिकार

अतिथि सत्कार पाने का अवसर चक्कर क्लब के सदस्यों को प्रायः नहीं मिलता।.........फिर दर्शन देने की प्रार्थना, आतुर और द्रवित स्वर में कोई उनसे नहीं करता।.........एक और पूरी ले लेने के लिये कोई उनसे अनुरोध नहीं करता।.........अपना सिगरेट उन्हें फूंकते देखने का चाव किसी के मन में नहीं। क्यों? इसलिये कि समाज की प्रथा और व्यवस्था के अनुसार चक्कर क्लब के बेकार सज्जन इस सब आदान प्रदान के अधिकारी नहीं।

इस सब सहृदयता और स्वागत के अधिकारी हैं कौन? मिठाई और पकवान से महकता थाल क्या उनके सामने पेश किया जाता है, जिनकी आँतें भूख से कुलबुला रही हों; जो थाली भरा भोजन पा अपने को स्वर्ग में पहुँचा समझने लगे? बर्फ से ठण्डा संतरे के रस का गिलास पिलाने की ज़िद क्या उन लोगों से की जाती है, जिनके होठों पर प्यास से पपड़ी पड़ गई हो? क्या खमीरे तम्बाखू से महकता पेचवान और टर्किश सिगरेट उन लोगों को पेश किये जाते हैं, जिन्हें फर्श पर पड़ी अधजली बीड़ी देख उसे उठा लेने का प्रलोभन होने लगे? धूप में पैदल चलकर आये आदमी का आतिथ्य किया जाता है सीधे प्रश्न से—क्या काम है? और सवारी में बैठे-बैठे चले आने वाले को गद्दी-दार कुर्सी दिखा, बैठने का आग्रह किया जाता है।

सम्मान समाज में उसका होता है जो मोहताज नहीं, भरा-पूरा है,

खुशहाल है। दमड़ी या छदाम की भी सहायता मिलने की आशा न होने पर भी सम्पन्न व्यक्ति को सलाम किया जाता है, मुस्कराकर जय रामजी कहना पड़ता है। ऐसे मनुष्य का आदर स्वागत करना आवश्यक होता है। पर यह आदर 'मनुष्य का नहीं, उसकी 'चादर' का होता है। मनुष्य की 'चादर' ही उसकी सम्पत्ति, शक्ति और सामाजिक स्थिति का चिन्ह है। जो स्वयम सम्पन्न नहीं, वे सम्पत्ति के मालिक का आदर, किसी सुदूर भविष्य में कभी सहायता पा सकने की सम्भावना में, या उसकी सम्पत्ति की शक्ति के भय से करते हैं। जो स्वयम सम्पन्न हैं, वे सम्पन्न का आदर सम्पत्ति के अधिकार और शक्ति को स्वीकार करने के लिये और सम्पन्नों की दृष्टि में अपनी स्थिति की स्वीकृति पाने की इच्छा से करते हैं। चक्कर क्लब के मेम्बरों के पास जब धन नहीं तो किस अधिकार से वे सम्मान की, प्रेम-स्वागत की और पराये धन से व्यंजनों की जुगाली करने की आशा कर सकते हैं?........वे कुछ आशा कर सकते हैं तो केवल चुनाव की फ़सल के मौके पर, जब सभी उम्मीदवारों की सहृदयता और सखावत छलक पड़ती है और गली-गली कर्ण और हातिमताई की पुण्य स्मृति को पुनर्जीवित करने वाले जाग उठते हैं। परन्तु ऐसे स्वर्ण-अवसर जीवन में आते ही कितने हैं? चुनाव की राज-नैतिक बहार का झोंका आता है और निकल जाता है। और चक्कर क्लब के मेम्बर बेकारी की जेठ की दुपहरिया से झुलसे समाज के आर्थिक क्षेत्र में सूखे निस्सार तृणों जैसी जीविका चबाते नज़र आते हैं, जिसमें चाय भरा मिट्टी का कुल्हड़ और उधार माँगी बीड़ी तक दुर्लभ हो जाती है।

परन्तु कहते हैं न—बन में बन्दरों की लड़ाई के कारण बेर झड़ते हैं तो गीदड़ों की भी ज्योनार हो जाती है। वैसे ही एक भले-मानस पति-पत्नि में झगड़ा हो जाने से चक्करक्लब के दार्शनिक और इतिहासज्ञ को आतिथ्य पाने का अवसर मिलने लगा। भले-मानस से मतलब बेबस और गरीब नहीं। ऐसा आदमी भला हुआ तो क्या, और बुरा

हुआ तो क्या ? मतलब है, सफ़ेद-पोश सम्पन्न व्यक्ति से। झगड़े से अभिप्राय लाठी, पत्थर या घूँसेबाज़ी से नहीं। ऐसे मौके से हमारे दार्शनिक और इतिहासज्ञ उसी तरह दूर भागते हैं जैसे रोशनी से चमगीदड़। कर्मवीर या शस्त्रवीर वे कभी बन नहीं पाये। पैसा-धेला कमाकर सम्मानित होने का उन्हें न अवसर है न रुचि, परन्तु बातवीर वे ऊँचे दर्जे के हैं। युक्ति और तर्क, जिस तरह का भी चाहिये, उनके पास पैंतरे से तैयार मिलेगा।

झगड़ा यह है कि श्रीमतीजी ने वूमेन्स लीग ( अखिल भारतीय स्त्री सभा ) के प्रस्ताव पढ़ लिये हैं और उनका विचार है कि देश की स्त्रियों की गिरी अवस्था सुधारने के लिये उन्हें समाज-सेवा के मैदान में उतर आना चाहिये। यों तो श्रीमान स्वयम् नये तरीके चलन और स्त्री-स्वातंत्रता के पक्षपाती हैं परन्तु सबसे अधिक महत्व वे देते हैं, पारिवारिक और सामाजिक शांति को। श्रीमान और श्रीमती के विचारों का प्रभाव समाज की अवस्था और देश के क़ानून पर क्या पड़ सकेगा, कहना कठिन है। फ़िलहाल दोनों दलीलों से एक दूसरे को क़ायल कर देना चाहते हैं। दोनों ही अपने-अपने समर्थकों को चाय के बहाने घर बुलाकर अपने-अपने पक्ष की दलीलें पेश करवाते हैं।

अबतक यदि श्रीमान घर के कामकाज में श्रीमतीजी को किसी भूल की ओर संकेत कर देते तो श्रीमती कुछ समय के लिये मान से मुँह फुला लेतीं और मनाने पर मान जातीं। इस रूठने और मान मनौवल से दम्पति के कुण्ठित होते प्रेम पर सान चढ़ जाती, वह नया और तीखा बना रहता। परन्तु जबसे श्रीमती को अपने अधिकारों का ख़याल हो आया है, यह रूठना मानलीला में समाप्त न होकर बहस में तबदील होजाता है और बहस दिनों चलती ।

अभी उस रोज़ श्रीमती किसी जलसे में गई हुई थीं। भाग्य के विद्रूप से उस संध्या नौकर खाना ठीक से न बना पाया। श्रीमान ने

गृहस्वामी के पद के अधिकार से एतराज़ किया लेकिन श्रीमती ने सांस भरकर मुँह फुला लेने के बजाय उत्तर दे दिया—"मैं कोई खाना पकाने की नौकर तो हूँ नहीं।"

क्रुद्ध हो पतिदेव ने पूछा—"तो घरका काम देखना तुम्हारा कर्तव्य नहीं?"

उत्तर में प्रश्न हुआ—"तो क्या मैं घरके कामकी नौकर हूँ?"

यह प्रश्न ऐसा था जिस पर दुतरफ़ा बहुत कुछ कहा जा सकता था। पति-पत्नी का यह झगड़ा चाय की महफ़िल में मेहमानों के सामने सभ्यातापूर्ण ढंग से, सामाजिक समस्या के रूप में पेश हुआ। प्रश्न था, स्त्रियों का क्षेत्र और उनके अधिकार! श्रीमती की एक सहेली ने गम्भीरता से दावा किया—"भारतीय सभ्यता में स्त्री का स्थान खास सम्मान पूर्ण है, वह घर की स्वामिनी है। उसे 'देवी' शब्द से सम्बोधन किया जाता है। अवतारों के नाम तक में स्त्री का नाम पहले और पुरुष का नाम बाद में आता है जैसे राधाकृष्ण, सीताराम, उमाशंकर! भारतीय घराने में स्त्री को माता का पद दिया गया है! माता के नाते उसका स्थान सबसे ऊँचा है।"

श्रीमान के एक समर्थक बोले—"स्त्री का स्थान माता का ज़रूर है, वह पूजा की भी पात्र है, परन्तु पूजा के पात्र जितने देवी-देवता होते हैं वे सब मन्दिर में बन्द रहते हैं और चाबी रहती है पुजारी की जेब में। घर के मन्दिर में स्त्री पूजा की प्रतिमा है ज़रूर, परन्तु मन्दिर का मालिक पुजारी तो पुरुष ही है। इसलिये उसी का अधिकार और शासन चलना ज़रूरी है।"

इनकी इस बात से श्रीमान जी के समर्थकों के दबे हुए होंठों से हँसी बिखर पड़ी। श्रीमती और उनकी भरपूर देह सहेली के होंठ डोरी खिंचे बटुए की तरह सिकुड़ गये। श्रीमती के दूसरी ओर बैठी हुई थीं, उनके साथ वूमेंस लीग में काम करनेवाली एक दुबली-पतली, छरहरे

बदन और विशाल नेत्रों वाली सुशिक्षिता युवती। घुटनों पर रखे अपने बटुए से रूमाल निकाल वे माथे का पसीना वे पोंछती जाती थीं और प्रत्येक बोलनेवाले के होठों की ओर ध्यान से देखती रहतीं। श्रीमान के सहायक की इस बात का उत्तर देने के लिये उनका अंतरतम तक व्याकुल हो उठा परन्तु करवट लेकर ही रह गईं। शायद पहले परिचय न होने का संकोच था।

श्रीमती की कृपा से गरमागरम समोसे खाकर दूसरे साहब ने कहा—"स्त्री को माता की पूज्य पदवी देना और फिर उसे पुरुष के कब्ज़े में बताना, यह स्वयम् पुरुष की ईमानदारी का मज़ाक है।" यह सुनकर देवी जी के चेहरे पर उत्साह की लाली छा गई और उन्होंने नौकर को सम्बोधन कर आज्ञा दी—"अरे ओ! देखो, समोसे और लाओ!"

दार्शनिक चाय का प्याला समाप्त कर होठों को चूसते हुए इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि श्रीमान सिगरेट केस जेब से बाहर निकालें। इसलिये अपने हाथों को मलकर उन्होंने संकेत किया कि खाने पीने के साथ कुछ धुआँ भी हो तो बुद्धि को चेतना मिले। श्रीमान को सचेत करने के लिये उन्होंने कहा—"सो तो बिलकुल ठीक है परन्तु माता की पदवी की सबसे बड़ी दावेदार तो गंगा मैया हैं, जिनकी छाती पर स्टीमर और नावें रगेदी जाती हैं और जिनका अंग-भंगकर खेती को सींचा जाता है। दूसरी पूज्य माता हैं, गैया! जो मनुष्य के उपयोग के लिये गले में रस्सी पहरे, भूसी और घास की कृपा के लिये मनुष्य की ओर कातर दृष्टि से निहारा करती हैं। गैया मैया स्वतंत्रता के मिथ्याभिमान से या पूज्य माता होने के गर्व से, दूध देने के समय यदि लात चलाने का साहस करती हैं तो लातों में रस्सी बाँधकर उनका दूध निकाल लिया जाता है। उनकी पूजा और उनके मातृत्व का सम्मान केवल इसीलिये है कि वे पुरुष यानी मनुष्य के लिये उपयोगी हैं।"

श्रीमती की माता के पद का दावा करनेवाली सहेली ने चिढ़कर प्रश्न किया—"तो आप स्त्री को भी गाय की ही तरह पुरुष की सम्पत्ति समझने का साहस कर सकते हैं ?"

दार्शनिक की इस चोट से प्रसन्न होकर श्रीमान जी ने तुरंत सिगरेट केस खोल उनके सामने पेश कर दिया और नौकर के उद्देश्य से चिल्लाकर बोले—"अरे ओ ! क्या कर रहे हो; चाय और क्यों नहीं लाते ?" और फिर अपने विचारों की उदारता का परिचय देने के लिये उन्होंने कहा—"अजी, स्त्री और पुरुष दोनों का समाज में अपना-अपना स्थान है, अपना-अपना कर्तव्य है.........।"

आराम से सिगरेट सुलगा दार्शनिक ने दुस्साहस का ताना देनेवाली श्रीमतीजी की ओर देखकर उत्तर दिया—"साहस की बात आप पूछती हैं ?.........हम तो उन सब पुरुषों को महामूर्ख समझते हैं जो स्त्री नाम के जीव को पालकर अपने सिर व्यर्थ में इतना भारी झंझट ले लेते हैं ! आप ही कहिये, पुरुष के जीवन का झंझट ही क्या ? परन्तु स्त्री के आ जाने से हज़ार झंझट पैदा हो जाते हैं। स्त्री से पैदा हो जानेवाले झंझटों से.........आप स्वयं बताइये.........पुरुषों को मुसीबत के सिवा लाभ क्या ?"

तिनक कर श्रीमतीजी बोलीं—"वाह, झंझट तो पुरुषों की वजह से स्त्रियों को ही उठाना पड़ता है। बेचारियों को उम्र भर गुलाम बनाकर रखा जाता है ? पुरुषों को क्या झंझट है ; उन्हें कौन क़ैद है ? ज़ुल्म करते हैं और चैन से रहते हैं।"

व्यर्थ जलते हुए सिगरेट का जीवन सार्थक करने के लिये एक खूब लम्बा कश खेंच दार्शनिक बोले—"पुरुषों को क़ैद है उनकी हिमाक़त की वजह से ! जो दिन भर बैल की तरह घर का कोल्हू चलाने के लिये परेशान रहते हैं। पुरुष कमबख़्त यह हिसाब लगाने का ख़याल कभी नहीं करता कि उसके परिश्रम के फल का कितना

भाग स्वयं उसके उपयोग में आता है और कितना उससे लिपटी आकाश बेल खैंच लेती है। उसे फ़िक्र रहती है, बीवी के लहँगे में किनारी लगाने की और बीवी से पैदा होते जानेवाले बच्चों की?........"

कुर्सी पर आगे खिसक और तिपाई पर घूँसा मारकर उन्होंने कहा—"आप लोग प्रकृति को ठीक मानते हैं या नहीं? आप बताइये कौन बैल गौ-माता के लिये चारा इकट्ठा करने की फ़िक्र करता है? कौन शेर शेरनी के लिये शिकार ढोता फिरता है? या हिरन हिरनी के लिये घास बटोरता है? पक्षियों में अलबत्ता इतना रिवाज़ ज़रूर है कि बच्चा जब तक फुदकने लायक न हो जाय, मर्द उसकी चोंच में चुगा देता है। और देखिये पुरुष को? अपने आपको जीवों का राजा समझता है परन्तु है वह वास्तव में पशुराज! क्योंकि पशुओं की तरह हल में जोता जाकर खुश होता है। बीवी को सोने चाँदी और रेशम में लपेट-लपेट कर रखता है इसलिए कि वह आँखों में काजल लगा उसकी ओर देख मुस्करा दिया करे? और फिर इन्हीं आँखों से ज़ख्मी होकर रोता है—"तेरी इन आँखों ने किया बीमार हाये........!"

दार्शनिक को चुप होते देख इतिहासज्ञ ने अपना खाली प्याला तिपाई पर रखते हुए कहा—"अपनी सम्पत्ति को बना-सँवार कर यदि पुरुष रखता है तो इससे मिल्कियत का संतोष तो उसे होता है। पुरुष स्त्री की सेवा भी उसका उपयोग अधिक अच्छे और गहरे ढंग से कर पाने के लिये ही करता है? इसमें एहसान की बात क्या? स्त्री का अस्तित्व ही पुरुष के उपयोग के लिये है?"

कढ़ाई की गरमी से चिटकते और भाफ़ उड़ाते हुए समोसों की तश्तरी नौकर के हाथ से ले, समोसों के शौक़ीन अपने वकील के सामने रख श्रीमती ने सहायता माँगती, कातर आँखों से देखा।

गरमागरम समोसे से जिह्वा को तेज़ करते हुए यह सज्जन बोले—"स्त्री को पुरुष के उपयोग की सम्पत्ति समझना, पुरुष की सम्पूर्ण सभ्यता,

संस्कृति, साहित्य और नैतिक भावना का अपमान करना है। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्तर पर है। स्त्री पुरुष की प्रकृति से पशुता के भाव को दूरकर, उसे विचारपूर्ण, सूक्ष्मदर्शी और न्यायप्रिय बनाती है। यदि आपके साहित्य से स्त्री के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला विषय निकाल दिया जाय तो उसमें शेष रह क्या जाता है? यही बात आपकी कला, आचार और नीति शास्त्र के सम्बन्ध में है। पुरुष यदि अपनी पाशविक शक्ति से स्त्री पर शासन करता है तो यह उसका अन्याय है, उसके मनुष्यत्व में न्यूनता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य सभ्यता के मार्ग पर क़दम बढ़ाता जाता है, वह स्त्री के अधिकार और सम्मान को स्वीकार करता जाता है।" अकाट्य प्रमाण और गम्भीर युक्ति देने के भाव से इन महाशय ने श्रीमान् के सहायक, दार्शनिक और इतिहासज्ञ को ललकारा।

समोसों की तश्तरी एक बेर फिर इनकी ओर सरकाकर देवीजी ने संतोष से अपनी सहेली की ओर देखा और फिर कनखियों से श्रीमान् की ओर।

श्रीमतीजी की सहेली गर्व से सिर ऊँचाकर बोलीं—"भारतीय सभ्यता में स्त्री को सदा ही पुरुष से ऊँचा माना गया है तभी तो शास्त्रों में लिखा है—यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता! जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का आशीर्वाद बरसता है।"

श्रीमान्‌जी ने परेशानी से अपने समर्थकों के चाय के प्याले दुबारा भरने आरम्भ किये। उनके समीप बैठे उनके एक समर्थक बोले—"भारतीय साहित्य में यह भी तो लिखा है—ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, यह सब ताड़न के अधिकारी।"

इनके इस सस्ते और ओछे मज़ाक से खीझकर श्रीमती के समर्थक, समोसा-प्रेमी सज्जन बोले—"इन तुच्छ बातों में क्या रखा है? क्या आप अपने साहित्य और संस्कृति में स्त्री की बड़ी भारी देन से इनकार कर

सकते हैं ? स्त्री में जो भावुकता, करुणा और कोमलता है, उसे आप पुरुष में कहाँ पाइयेगा ? क्या आप इस बात से इनकार कर सकते हैं कि स्त्री ने पुरुष को मनुष्य बनने में सहायता दी है ?"

होठों में थमे सिगरेट के धुयें से चरमराती आँखों को कठिनाई से खोलकर दार्शनिक बोले—"स्त्रियों ने पुरुष को मनुष्य बनने में जो सहायता दी है उससे इनकार करने की ज़रूरत नहीं परन्तु स्त्रियों ने सहायता दी नहीं, उपयोग का साधन बनाकर सहायता उनसे ली गई है। मनुष्य की उन्नति के कार्य में भाफ़ के इंजन ने बहुत सहायता दी है। भाफ़ के इंजन की तरह मनुष्य लाखों मन बोझ नहीं खींच सकता। घड़ी ने मनुष्य की सभ्यता के विकास में बहुत सहायता दी है। मनुष्य घड़ी की तरह पल-पल और क्षण-क्षण का हिसाब अपने दिमाग़ में नहीं रख सकता और सुनिये मनुष्य रेडियो यंत्र की तरह हवा में से शब्द की लहरों को नहीं पकड़ सकता। परन्तु यह सब यंत्र मनुष्य के स्वामी और शासक होने का दावा नहीं कर सकते। यह सब मनुष्य के विकास में सहायता देते हैं परन्तु हैं वे मनुष्य के उपयोग के लिये ही, उसके समान या उससे बड़े वे नहीं हैं।"

श्रीमती ने बिगड़कर कहा—"पुरुषों के दिमाग़ में न जाने कैसा मिथ्या अभिमान भरा है कि स्त्रियों को अपने उपयोग की सम्पत्ति समझते हैं।"

श्रीमान् के सहायक बोले—"जो सदा से होता चला आया है उसमें मिथ्या अभिमान की बात क्या ? स्त्रियों में पुरुषों के समान शक्ति और सामर्थ्य है ही नहीं तो रोने झींकने से वे उनके समान हो कैसे सकती हैं ?"

श्रीमती की सहेली ने इस धृष्टता का विरोध किया—"वाह सदा से ऐसा कहाँ होता आया है ? भारत में स्त्रियों का बहुत सम्मान था। उनका स्थान बिलकुल पुरुषों के बराबर था। पुरुष और स्त्री को आधा-

आधा अंग माना गया है। विवाह के समय पुरुष को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि प्रत्येक बात में स्त्री की राय से काम करेगा। स्त्री को देवी कहा गया है। स्त्री का स्वयम्बर होता था और वह अपनी इच्छा से पति चुनती थी। यह तो आजकल की चरित्रहीनता है कि पुरुष अपने आपको ही सब कुछ समझने लगे हैं। स्त्रियाँ पुरुषों से किस बात में कम हैं। रानी लक्ष्मीबाई, चाँदबीबी और चित्तौड़ की पद्मिनी किससे कम थीं? स्त्रियों को अवसर मिले तो वे क्या नहीं कर सकतीं? पुरुष उन्हें अवसर ही नहीं देते।" देवीजी इतने आवेश में बोल रही थीं कि क्रोध में थुथला जाती थीं और उनकी आँखों के लाल डोरे फैल गये।

इतिहासज्ञ इन देवी जी के रोब में आ जाते परन्तु चाय के नये प्याले की भाफ़ ने उनका साहस बढ़ा दिया, बोले—"भारत में क्या होता था सो तो हमें भी मालूम है। हिन्दुओं की स्मृतियों में लिखा है—"स्त्री शूद्रौ न धीयाताम।" अर्थात् स्त्री और शूद्र को पढ़ाना नहीं चाहिए। वजह, स्त्री और शूद्र को पढ़ाया जायगा तो वह सेवा के काम के नहीं रहेंगे, दलील करने लगेंगे। बैल को आप बाजीगरी के खेल सिखाइये तो फिर वह हल थोड़े ही जोतेगा? कहेगा, मैं अपनी इच्छा से काम करूँगा और मालिक से बराबरी का दावा करेगा। हिन्दुओं के यहाँ स्त्री को कितनी स्वतंत्रता थी, यह तो इसी बात से प्रकट है कि विवाह को कन्यादान कहा जाता है। जिस वस्तु का दान कर दिया जा सकता है, उसकी इच्छा या अनिच्छा का, उसकी स्वतंत्रता का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। स्वयम्बर किया जाता होगा परन्तु वह स्त्री को स्वतंत्रता देने के लिये नहीं। इसलिये कि वीर पुरुष आपस में औरत के लिये झगड़ें नहीं। स्वयम्बर के मैदान में औरत को कौड़ी की तरह उछाल फेंका, जिसके भाग में जा पड़ी उसकी क़िस्मत! उसमें लड़ने-झगड़ने की कोई बात नहीं।"

मुँह तक आई बात को अनेक बेर निगलकर श्रीमती की विशालाक्षी सहेली, माथे पर फूटते हुए पसीने के कणों को हथेली में छिपे रूमाल से सुखाती हुई आख़िर बोलीं—"यह सब बातें और नियम तो पुरुषों के बनाये हुए हैं। यदि वे उनके हक़ में हैं तो आश्चर्य क्या? परन्तु प्रकृति ने स्त्रियों को भी पुरुषों के समान ही पैदा किया है। फिर कोई वजह नहीं कि समाज में स्त्रियों को समान सुविधा और अधिकार न हो?"

अपने चाय के प्याले को आधे में ही छोड़कर इतिहासज्ञ बोल उठे—"आप चाहती तो बहुत कुछ हैं परन्तु उसकी परिस्थिति ने स्त्री को जो पुरुष के वश में रहने के लिये मज़बूर कर दिया है, यह बात आप कैसे नज़रअन्दाज़ कर सकती हैं?"

"क्या मतलब आपका?"—देवीजी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को विस्मय से और अधिक फैलाते हुए पूछा—

"मतलब यह है"—इतिहासज्ञ बोले—"यदि स्त्री हिरनी या शेरनी की तरह अपने बाल-बच्चे को ले बन-बन उछलती फिरने के लिये तैयार है, वह वन्य जन्तुओं की मादा की उत्पत्ति की जिम्मेवारी उसके पिता पर डालकर उससे निरंतर सहायता लेती रहना चाहती है, तो उसे उस पर निर्भर रहना ही होगा।"

"परन्तु परिवार के सगठन में पुरुष भी तो स्त्री पर निर्भर करता है?"—विशालाक्षी देवी जी ने अपनी कोमल और पतली उँगलियों को हवा में नचाकर प्रश्न किया।

बहस को बारीक उलझन में फँसते देख इतिहासज्ञ अपनी चाय भूल उत्तेजना में बिलकुल कुर्सी के किनारे पर खिसक आये। देवीजी की उँगलियाँ नचाने के उत्तर में अपना लम्बा चौड़ा हाथ उठाकर इन्होंने कहा—"मान लिया कि परिवार के संगठन में स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। परन्तु दोनों में जो बलवान होगा, अधिक समर्थ होगा, परिवार का नियंत्रण उसी के हाथ·······।"

कुछ क्रुद्ध स्वर में देवीजी ने टोककर कहा—"यानी पुरुष को अपनी शारीरिक शक्ति, पाशविक शक्ति पर अभिमान और भरोसा है।"

"जब वह शक्ति है तो उससे इनकार कैसे किया जा सकता है?"—श्रीमान्‌जी के समर्थक ने अपने सबल घूँसे का प्रबल प्रहार अपनी कुर्सी की बाँह पर कर श्रीमान्‌जी की ओर देखकर पूछा।

बहस में झगड़े का रंग आता जान और आइन्दा चाय और समोसों की आशा जाती देख दार्शनिक अपने आधे जले सिगरेट को राखदानी में छोड़, दोनों हाथ उठाकर बोले—"देखिये देखिये, पाशविक शक्ति की बात नहीं। मैशीन ने मनुष्य शरीर की पाशविक शक्ति का महत्व बहुत घटा दिया है। प्रश्न है व्यवस्था का। आजकल भी आप देखते हैं, समाज में पैदावार पूँजीपति मालिकों और उनके मज़दूरों के सहयोग से होती है परन्तु नियंत्रण मालिकों का ही रहता है। इसलिये नहीं की पूँजीपति पहलवान होते हैं और मज़दूर शारीरिक रूप से कमज़ोर! बल्कि इसलिये कि व्यवस्था पूँजीपति के हाथ में रहती है।

इनकी बात काटकर विशालाक्षी देवीजी ने फिर टोक दिया—"परन्तु पूँजीपतियों को तो आप लोग कोसते हैं, ताने देते हैं……।"

इन्हें चुपकारने के लिये हाथ उठा दार्शनिक बोले—"क्षमा कीजिये, यह अधिकार स्त्रियों का है।"—"बिल्कुल ठीक"—ऊँचे स्वर में समर्थन कर श्रीमान के मित्र प्रसन्नता से अपनी कुर्सी पर उछल पड़े। इस मज़ाक की कुछ भी चिंता न कर विशालाक्षी देवी ने अपने प्रश्न को फिर से दोहराया—"पूँजीवाद को आप बुरा समझते हैं तो स्त्रियों पर पुरुषों के नियंत्रण को आप अच्छा कैसे समझ सकते हैं?"

देवीजी को ढंग पर आते देख दार्शनिक ने शान्त स्वर में उत्तर दिया—"अच्छा हम दोनों को ही नहीं समझते परन्तु जैसे पूँजीवाद कुछ कारणों से पैदा हुआ और ऐसा होना समाज के विकास के लिये

स्वाभाविक और आवश्यक था, उसी प्रकार कुछ कारणों से स्त्रियों पर पुरुषों का नियंत्रण हुआ और समाज का जैसा कुछ विकास हो सका है, उसके लिये यह स्वाभाविक और आवश्यक था। परन्तु इनके माने यह नहीं कि पूँजीवाद सदा के लिये बना रहे। उसकी उपयोगिता समाप्त हो गई। इसी प्रकार अब स्त्रियों का दास बनाये रखना पुरुषों के लिये उपयोगी नहीं रहा।"

"यह आप कैसे कह सकते हैं कि स्त्रियों पर पुरुषों का नियंत्रण आवश्यक और स्वाभाविक था?"—देवीजी ने निराशा के से स्वर में पूछा।

श्रीमान का सिगरेट जलाने का हक़ अदा करते हुए इतिहासज्ञ बोले—"पुरुषों के नियंत्रण की बात सुनकर आपको बुरा तो मालूम होता है परन्तु उसके कारणों को तो सोचिये। आप समाज की उस अवस्था को याद कीजिये जब मनुष्य छोटे-छोटे कबीलों और कुनबों के रूप में थोड़ी बहुत ज़मीन खेती के लिये घेर कर और जंगल से शिकार करते निर्वाह करता था। जीवन-निर्वाह का सहारा या तो खेती की मामूली ज़मीन थी या शिकार। उस समय यह क़बीले आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। उस समय स्त्री की क्या स्थिति हो सकती थी? पुरुष खेती की ज़मीन खोदने, शिकार इकट्ठा करने और अपने क़बीले के शत्रुओं से लड़ने में लगा रहता होगा और स्त्री बच्चे को पेट या पीठ पर बाँधे खेती का काम करती होगी या पालतू बैल बकरी को चारा डालती होगी? युद्ध और भय के समय पुरुष अपने क़बीले की स्त्रियों को बीच में घेरकर या गुफा में छिपाकर शत्रु का सामना करता होगा। उस समय पुरुष भय का सामना स्वयम् करता था और स्त्री की भय से रक्षा करता था। वह चाहता तो स्त्री को मार-पीट कर युद्ध और भय का सामना करने भेज देता और स्वयम् चैन की नींद सोता। परन्तु ऐसा करने में उसकी रक्षा न होती। इसलिये भय का सामना क़बीले के

पुरुष ही करते थे और स्त्रियों की रक्षा करते थे। इसलिये नहीं कि स्त्रियाँ कुर्सी पर बैठकर स्वतंत्रता माँगें बल्कि इसलिये कि वे उनकी आवश्यकतायें पूरी करें। पुरुष स्त्री की रक्षा करता था, आत्मरक्षा के लिये ! यह आत्मरक्षा व्यक्तिगत रूप से नहीं सम्मिलित रूप से कुनबे या क़बीले के रूप में ही हो सकती थी। क़बीले में दस-पाँच वीर पुरुषों की मृत्यु का नुक़सान बर्दाश्त किया जा सकता था परन्तु स्त्री की मृत्यु का नहीं। क्योंकि एक स्त्री कई पुरुषों को जन्म देने की शक्ति रखती है। स्त्री को कुनबे और समाज की वृद्धि का स्रोत समझा गया और माता कहकर उसके उपयोगी और मूल्यवान होने का भाव प्रकट किया यह नहीं कि वह समाज की मालिक बना दी गई।"—इतिहासज्ञ ने दम लेने के लिये विशालाक्षी देवीजी को सम्बोधन कर पूछा—"समझती हैं आप ?"

"आप का मतलब है, स्त्री पुरुष की सम्पत्ति है ?"—उन्होंने असंतोष के स्वर में प्रश्न किया।

"स्त्री आज भी सम्पत्ति है, यह तो हमने कहा नहीं।"—इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया—"परन्तु उस समय स्त्री पुरुष की व्यक्तिगत सम्पत्ति न सही कुनबे की सम्पत्ति अवश्य थी। उस समय कोई भी वस्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति न होती थी, न भूमि, न पशु और न स्त्री, सभी कुछ कुनबे का था। उस समय दो कुनबों में लड़ाई होने पर हारे हुए कुनबे के पुरुषों को मारकर खा लिया जाता था और स्त्रियाँ छीन कर पाल ली जाती थीं। जंगली जातियों में अब भी ऐसा ही होता है। स्त्रियों को छीन लेने का अर्थ होता है कि वे किसी की वस्तु रही होंगी और छीनने वाले के लिये भी उपयोगी हो सकती हैं। स्त्रियों को छीन लेने की प्रथा तो आपके आदर्श और अभिमान की वस्तु रामायण और महाभारत के समय तक ही नहीं बल्कि राजपूतों और मुग़लों के समय तक थी ? उस प्रथा के गौरव के कारण आज भी वर कन्या के घर बरात के रूप में

सेना लेकर और कमर में तलवार बाँध कर जाता है। पुरुष जब असभ्य था, तब स्त्री को छीन लेता था। अब सभ्य हो गया है तो उसका कन्यादान करता है।"

क्रोध में भिन्नाकर विशालाक्षीजी बोलीं—"पुरुषों की इस नीचता और पशुता पर आप अभिमान करना चाहते हैं क्या?" "हाँ और क्या"—श्रीमती ने उनका समर्थन किया। देवियों के अपनी कुर्सियों प विचलित होजाने से ऐसा भय हुआ मानो वे सामूहिक रूप से पुरुषों पर आक्रमण कर अपने निरंतर दमन का बदला ले लेना चाहती हैं।

बहुत दिनों में मिली मनभाई चाय की तृष्णा दार्शनिक अभी पूरी नहीं कर पाये थे। वातावरण को शांत करने के लिये उपेक्षित चायदानी से ठण्डी चाय उड़ेलते हुए उन्होंने कहा—"जैसे मनुष्य अपनी जंगली अवस्था की याद कर मनुष्य को भून कर खालेने की बात का अभिमान नहीं कर सकता, उसी प्रकार स्त्री को सम्पत्ति बनाये रखने की बात कार भी गर्व वह नहीं कर सकता।"

इस बात से श्रीमतीजी का डूबता हुआ हृदय खिल उठा। सहृदयता से दार्शनिक को ठण्डी चाय न पीने की सलाह दे उन्होंने चायदानी में और गरम पानी ले आने का आदेश नौकर को दिया।

बनी बनाई बात बिगड़ जाने के कारण विक्षिप्त हो श्रीमान के सहायक बोले—"किसी समय स्त्रियों की चाहे जो अवस्था रही हो परन्तु आजकल योरूप की उल्टी सभ्यता के ज़माने में तो सब ओर स्त्रियों का ही प्रभुत्व दिखाई दे रहा है।" एक अख़बार उठाकर उन्होंने कहा—"यह देखिये तो ९० फ़ी सदी वस्तुयें स्त्रियों के मसरफ़ की। कविता पढ़िये तो उसमें भी स्त्री के सौन्दर्य का चर्चा, कोई अच्छा चित्र देखिये तो उसमें औरत! यह औरतों का राज नहीं तो और क्या है?"

देवियाँ विस्मयपूर्ण नेत्रों से सोचने लगीं कि यह बात उनके पक्ष में हुई या विपक्ष में? उनका विस्मय और भी बढ़ गया जब दार्शनिक ने

मुस्कराकर कहा—"इसे आप समाज में स्त्रियों का प्रधान्य नहीं कह सकते ? इसे आप स्त्रियों की क़द्र कह सकते हैं। और स्त्रियों की यह क़द्र पुरुष अपने ही संतोष के लिये करता है। स्त्री को आधार बनाकर जो कला और साहित्य चलता है, वह प्रधानतः पुरुष के संतोष के लिये ही है। स्त्री के सम्बन्ध से पुरुष को जो सुख मिलता है, उसका बखान स्त्री के मुख से करा कर, स्त्री के मुख से अपने विरह के गीत सुनकर उसका आत्माभिमान पूरा होता है।"

देवियों के माथे पर पड़ती भृकुटी की कुछ भी चिन्ता न कर वह कहते चले गये—"यही पुरुष का काव्य और कला है। पुरुष की सबल अंगभंगी देखने की अपेक्षा स्त्री की कोमल अंगभंगी देखने से उसके स्नायु तंतुओं में अधिक स्फुरण होता है। उसके शरीर में रसों का वेग बढ़ जाता है। इसलिये वह स्त्री को नचाता है। यों तो वह लज्जा को स्त्री का भूषण निश्चित करता है परन्तु फ़ैशन के तरीके में वह अपनी बालों से भरी भुजाओं और सीने को मोटे कपड़े से ढककर, लाज से कुम्हलाती कामिनी को बांहें, सीना और पीठ खुली रखने की सलाह दे देता है। स्त्री को वह सजीली और संतुष्ट देखना चाहता है, क्योंकि संतुष्ट स्त्री का उपयोग अधिक सुखदाई होता है।"

श्रीमान के सहायक सहसा बौखला उठे—"यह आप क्या कहते जाते हैं ? स्त्रियाँ क्या पुरुषों से अधिक सुन्दर होती हैं ?"........कभी नहीं ! आप बताइये, कबूतर अधिक सुन्दर होता है या कबूतरी; शेर अधिक सुन्दर होता है या शेरनी; मोर अधिक सुन्दर होता है या मोरनी ?"—ललकार के भाव से दार्शनिक की ओर वे देखने लगे।

श्रीमती ने चायदानी में नई चाय लाने का हुक्म दिया था परन्तु चाय आने तक उनका उत्साह धीमा पड़कर श्रीमान अधिक उत्साहित हो गये। नौकर के हाथ से चायदानी ले उन्होंने अपने साथी के इनकार करते जाने पर भी उनका प्याला नये सिरे से भर दिया और इनके

बाद दार्शनिक के लिये नये प्याले में चाय डाल वे एक पर एक चम्मच चीनी के उसमें छोड़ने लगे। यहाँ तक कि घबराकर दार्शनिक महोदय ने अपने दोनों हाथों से प्याला ढककर उसकी रक्षा की। और एक बेर अर्थपूर्ण दृष्टि से विशालाक्षी देवी की ओर देख उन्होंने उत्तर दिया—"शायद सुन्दर तो मोर ही होता है परन्तु मोर की दृष्टि में मोरनी ही अधिक सुन्दर जँचती है।"

इतिहासज्ञ का प्याला खाली ही रह गया था। इसलिये श्रीमान से आँखें मिलाकर उन्होंने कहना शुरू किया—"मनुष्य समाज का निर्वाह चलाता है, उसकी भूख और आवश्यकताओं को पूरा करनेवाली वस्तुओं से। इन वस्तुओं को या निर्वाह के साधनों को मुहय्या करने में पुरुषों का हाथ मुख्य रहता आया है। इसलिये उसका प्रधान रहना स्वाभाविक था।"—इतिहासज्ञ ने देखा श्रीमान अपनी भूल के लिये क्षमा माँगते हुए, उनका चाय का प्याला भर रहे थे। वे कहते चले गये—"क़बीलों की आदिम सभ्यता के ज़माने में स्त्रियाँ क़बीले की आवश्यकता पूर्ती का साधन थीं इसलिये क़बीले की सम्पत्ति थीं। क़बीलों का आकार बहुत लम्बा-चौड़ा हो जाने से वे परिवारों में बँटने लगे। एक-एक परिवार समाज में अपनी पृथक स्थिति बना अपना प्रबन्ध अलग-अलग करने लगा तब निर्वाह और आवश्यकता पूर्ती के दूसरे साधनों भूमि, पशु आदि की भाँति स्त्रियाँ भी परिवार की या परिवार के मुख्य पुरुष और उसके उत्तराधिकारी की सम्पत्ति बन गई। स्त्रियाँ खेती-बाड़ी आदि के कामों में सहायक होती थीं। परिवार में अधिक संतान होने से परिवार की शक्ति बढ़ती थी। इसलिये एक-एक पुरुष के कई-कई विवाह होने लगें। ग़ुलामी की प्रथा चालू हो जाने पर अमीर और साधनसम्पन्न लोग स्वयम् शारीरिक परिश्रम के कठिन कामों से बचने लगे। इसके साथ ही अमीरों और सम्पन्न सरदारों की स्त्रियों को भी कठिन शारीरिक परिश्रम से छुट्टी मिल गई। उनका कार्य हो गया, केवल

वंश और सम्पत्ति के लिये उत्तराधिकारी पैदा करना। यहाँ तक कि बहुत बड़े सर्दारों, नवाबों और राजाओं के यहाँ वंश और रक्त की शुद्धता और अभिमान क़ायम रखने के लिये ऊँचे वंश और शुद्ध रक्त की स्त्री को सुरक्षित रख, भोगविलास के लिये दूसरी स्त्रियाँ रक्खी जाने लगीं। भोग के लिये अधिक उपयोगी बनाने के लिये स्त्री को कठोर परिश्रम से दूर रख कोमल बनाया गया। जैसे मिठाई को अधिक रोचक बनाने के लिये उस पर चाँदी का वरक लगाकर उसमें सुगन्ध डाली जाती है, उसी तरह स्त्री के केशों में सुगन्धित तेल, उसके हाथों में मेंहदी, गालो और होठों पर सुरखी लगाई गई। उसके अंगो को सोने चाँदी और चमकीले पत्थरों के आभूषण बनाकर मढ़ा गया ताकि वह अधिक रोचक और आकर्षक बन सके.......।"

इतिहासज्ञ को टोककर दार्शनिक बोल उठे—"पीढ़ी दर पीढ़ी इस प्रकार उपयोग और उपभोग का साधन बनती रहने के कारण स्त्रियों के मन में ऐसे संस्कार पड़ गये हैं कि वे आज स्वतंत्रता की माँग का वावेला मचाकर भी अधिक सुन्दर, अधिक रोचक, और अधिक उपयोगी और आकर्षक होने का गर्व करती हैं।"

दार्शनिक की यह धृष्टता देवियों के लिये असह्य हो गई। श्रीमती जी की सहेली अपने घर चले जाने के लिये उठ खड़ी हुईं परन्तु इतिहासज्ञ और दार्शनिक के भाग्य से ठीक उसी समय पानी का एक बहुत ज़ोरदार छींटा आगया। श्रीमान की प्रसन्नता और उत्साह छलका पड़ता था। चील के परो की भाँति दोनों बाहें हिलाकर उन्होंने ऊँचे स्वर में उदारता से कहा—"अरे साहब बैठिये न, कहाँ जाइयेगा इस पानी में? इस बारिश में तो गरम पकौड़ी का मज़ा आयेगा!"—और देवीजी की उदासीनता की चिन्ता किये बिना उन्होंने नौकर को गरमा गरम पकौड़ी बना लाने की आज्ञा दे दी।

अपनी धृष्टता का मार्जन कर देवियों को संतुष्ट करने के लिये

दार्शनिक बोले—"स्त्रियों की स्वतंत्रता का प्रश्न मनुष्य की सभ्यता के विकास के साथ अनिवार्य रूप से बँधा हुआ है।" इस बात से देवियों को कुछ भी संतोष होता न देख इतिहासज्ञ ने कहना शुरु किया—"ज्यों-ज्यों मनुष्य के निर्वाह के ढंग में परिवर्तन आता जाता है, उसके समाज की व्यवस्था और समाज में व्यक्तियों और श्रेणियों के पारस्परिक सम्बन्ध बदलते जाते हैं।'

इतिहासज्ञ की यह पहेली श्रीमतीजी की भारी भरकम सहेली की समझ में न आई। हाथ की पीठ पर ठोड़ी टिका, पलकें चढ़ा, उन्होंने पूछा—"किसका सम्बन्ध ?"

अपनी बात की ओर ध्यान आकर्षित देख इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया—"सभी के सम्बन्ध; स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध, उनका एक दूसरे पर निर्भर करना और परस्पर शोषण !"

"वो कैसे ?"—विशालाक्षी देवी ने सतर्कता से पूछा।

"देखिये, मैशीन का उपयोग होने से पहले समाज में मनुष्यों का जैसा परस्पर सम्बन्ध था, वैसा अब नहीं रहा।"

"कैसा सम्बन्ध था जो नहीं रहा !"—श्रीमान के सहायक ने विस्मय से पूछा।

"सम्बन्ध का मतलब है, निर्वाह के लिये ज़रूरी चीज़ों को पैदा करने में मनुष्यों का परस्पर सहयोग !"—इतिहासज्ञ बोले—"पहले मनुष्य के निर्वाह के लिये आवश्यक चीज़ें पैदा की जाती थीं खेती से या हाथ के परिश्रम से। मनुष्य जो कुछ परिश्रम से पैदा करता है, वह उसका या समाज का धन होता है। धन की सहायता से नया धन पैदा होता है। जिन लोगों के हाथ में धन होता है, वे पैदावार के साधनों के मालिक, अन्नदाता या प्रभु समझे जाते हैं। पुराने समय में धन पैदा करने का साधन था भूमि और मनुष्य का परिश्रम। इसलिये मालिक और ठाकुर लोग भूमि अपने अधिकार में रखते थे और भूमि पर काम

करने के लिये दासों की सेनायें रखते थे। उस समय मालिकों और प्रजा में दास और स्वामी का सम्बन्ध था। दास स्वामी की सम्पत्ति होते थे। सामाजिक रूप से स्त्री दासों की श्रेणी में गिनी जाती थी। इसीलिये कहा जाता था दास-धन, स्त्री-धन, पशु धन! और स्त्री, पुरुष को रिझाने के लिये अपने आपको पति के चरणों की दासी कहती थी....?"

"क्या हाँक रहे हो यार? हमारे यहाँ राजा-प्रजा का शोषण करते थे कि राम-राज्य में राजा प्रजा के सेवक होते थे....—?" श्रीमान के सहायक ने प्रश्न किया।

"प्रजा की सेवा करने के लिये उस पर शासन और अधिकार जमाने और सेना खड़ी करने की क्या आवश्यकता हो सकती थी साहब?"....दार्शनिक बीच में बोल उठे—"आप कहिये कि उस समय के राजा चतुर होते थे, प्रजा को और दासों को अपने अधिकार और शासन में रखने के लिये उन्हें संतुष्ट बनाये रखने की चेष्टा करते थे तो एक बात है। यों तो घरेलू पशुओं की भी सेवा की ही जाती है परन्तु इसका मतलब यह नहीं हो सकता कि उनकी सवारी न की जाय या उनसे दूध न दुहा जाय; वे उपयोग की वस्तु नहीं! यह प्रयोजन पूरा करने के लिये ही तो उनकी सेवा की जाती है, उन्हें बेटा और सन्तान बनाया जाता है।"

"समाज के आधार और नीति का उद्देश्य है व्यवस्था को चलाना!"—दार्शनिक की बात ले इतिहासज्ञ गम्भीर भाव से बोले—"इसीलिये समाज में निर्वाह की वस्तुओं को पैदा करने के काम ठीक से जारी रखने के लिये पुराने समय में उपदेश दिया गया कि दास का कर्तव्य है, मालिक को पिता और परमेश्वर समझे। मालिक की सेवा में यदि सेवक अपने प्राण अर्पण कर दे तो उसे स्वर्ग मिलेगा। परिवार की व्यवस्था में विघ्न न आने देने के लिये स्त्री को भी कहा गया कि सब प्रकार से पति को ही परमेश्वर माने, उसके लिये प्राण दे दे, उसके

मरने पर सती हो जाय ! पुरुष आपस में एक दूसरे की स्त्री के लिये मार-काट और झगड़ा न करें, इसलिये निश्चय किया कि दूसरे की औरत पर निगाह डालना पाप है..........।"

"तो यह सब नियम तो पुरुषों ने अपने ही स्वार्थ के लिये बनाये हैं"—विशालाक्षी देवी उत्साह से गर्दन ऊँची कर बोलीं—"और अब भी वे अपना राज क़ायम रखना चाहते हैं ?"

"पुरुष चाहें क्यों न ?"—अपनी कुर्सी पर आगे खिसक दार्शनिक ने कहा—"कोई अपना अधिकार और शक्ति अपने हाथ से क्यों जाने दे ? परन्तु मज़ा तो यह है कि स्वयम् स्त्रियाँ ही इस सामाजिक व्यवस्था को, जिसमें स्त्री की ग़ुलामी और उसका पुरुष पर निर्भर रहना अनिवार्य है, मजबूत बनाये रखने की चेष्टा करती हैं।"

इन्हें टोक, बेबसी में अपनी दोनों हथेलियाँ दिखाती हुई श्रीमती बोलीं—"वाह साहब, स्त्रियाँ भला अपनी ग़ुलामी क्यों चाहेंगी ? यह तो पुरुषों की जबरदस्ती है ; क्यों.......?"—उन्होंने विशालाक्षी देवी की ओर समर्थन की आशा से देखकर पूछा।

विशालाक्षी ने इनके इस प्रश्न की उपेक्षा कर दार्शनिक से अपने पक्ष के समर्थन में नई बात सुन पाने की आशा से पूछा—"इस व्यवस्था से आपका मतलब ?"

"यही विवाह की व्यवस्था।"—दार्शनिक ने कुछ सहमते हुए उत्तर दिया। दार्शनिक की इस बात से दोनों ही पक्ष के लोग विस्मित रह गये। श्रीमान के सहायक ने वितृष्णा से कहा—"आपका मतलब है विवाह ही नहीं होना चाहिये ? वाह साहब वाह ! खूब कहा आपने ! तो फिर सृष्टि चलेगी कैसे ?"

दार्शनिक की मूर्खता पर थोड़ा-सा मुस्कराकर श्रीमती की भारी भरकम सहेली ने सिर से खिसक गये साड़ी के आँचल को फिर से अपने स्थान पर जमाते हुए कहा—"यह भी कहीं हो सकता है ?"

दार्शनिक की बात शायद यों ही उड़ जाती परन्तु विशालाक्षी देवी ने पूछ लिया—"क्यों साहब, विवाह न हो तो फिर हो क्या ?"

इतिहासज्ञ बीच में कूद पड़े—"विवाह होता क्या है ?"

श्रीमती जी की सहेली ने अपने भारी शरीर को हिला, विस्मय सूचक संकेत से नेत्र घुमाकर पूछा—"विवाह क्या होता है ?.........विवाह तो होता है.........जैसे कि विवाह होता है।....सब जानते हैं.........विवाह क्या होता है।"

दार्शनिक की हँसी फूट जाना चाहती थी, इसलिये उन्होंने झट से सिगरेट थाम अपना हाथ होठों के सामने कर लिया। हँसी को खाँसी में बदल कर इतिहासज्ञ ने कहा—"हाँ विवाह तो होता ही है परन्तु उसका एक तात्पर्य है यानी घर बनाना। घर बनाया जाता है, जीवन के साधनों का संचय करने के लिये। मनुष्य जितना उपयोग में लाता है उतना ही संचय नहीं करता, उससे कहीं अधिक संचय करता है। और इन संचित साधनों को अपनी सन्तान को सौंप देने का अरमान रखता है। इन संचित साधनों का उत्तराधिकारी होता है, पुरुष संतान। परिवार में जो 'पुरुष' संतान पैदा होते हैं वे परिवार के उत्तराधिकारी और उसे चलानेवाले होते हैं और 'स्त्री' सन्तान दूसरे परिवार चलाने के लिये दे डाले जाते हैं। वंश के क्रम को आगे जारी रखने के लिये यह उत्तराधिकारी 'पुरुष' संतान एक 'स्त्री' लाता है ताकि वह अपने आगे एक और संतान पैदा करे जो वंश की नाम लेवा हो, क्यों साहब ठीक कहा.........।" इतिहासज्ञ ने पूछा ?

"हाँ तो फिर क्या हुआ ?"—श्रीमती की सहेली ने हाथ हिलाकर उत्तर दिया। विशालाक्षी देवी चुपचाप तन्मयता से देखती रहीं, मानों प्रत्येक शब्द को पकड़ते जाना चाहती हैं।

"होगा यह"—बहुत शान्ति से इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया—"पुरुष ही परिवार का मूल दण्ड या प्रधान व्यक्ति होगा और शेष वस्तुयें

उसकी सहायक होंगी। हमारे मौजूदा समाज में जीवन का आधार है, सम्पत्ति !.........या कह दीजिये, पैदावार के साधन ! संक्षेप में आप उसे पूँजी भी कह सकते हैं। इस पूँजी या सम्पत्ति की पैदावार और नियंत्रण समाज में व्यक्तिगत रूप से और वंश के क्रम से होता है और उसका मूल दण्ड पुरुष है, स्त्री आवश्यक या सहायक होकर बाहर से आती है। जिस समाज में पूँजी और सम्पत्ति की मिल्कियत व्यक्तिगत रूप में और विरासत से होगी वहाँ प्राधान्य पुरुष का होगा या नहीं ?"

श्रीमान् के सहायक को जैसे नीचे से कुछ काट गया। उछलकर बोले—"वाह साहब, आप इसमें समाजवाद क्यों घुसेड़ते हैं ?"

"समाजवाद साहब यों घुसड़ता है".........इतिहासज्ञ ने भी उसी कड़वाहट से उत्तर दिया........."कि समाज में जीवन का क्रम और आधार व्यक्तिगत बनाये रखने से यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक मनुष्य समाज के माने हुए क़ानून के अनुसार किसी न किसी व्यक्ति का उत्तराधिकारी होकर जन्म ले। इस नियम की परवाह किये बिना जो सन्तान पैदा हो जाती है वह समाज में किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकती। समाज उस सन्तान का कोई अधिकार स्वीकार नहीं करता। विवाह के रूप में ऐसा नियम बनाया गया कि प्रत्येक सन्तान के निर्वाह का उपाय उसके जन्म से पहले ही तैयार रहे। उपाय और साधनहीन लोग पैदा होकर जीवन-निर्वाह के साधनों के लिये बलवा और झगड़ा न करें। विवाह, सदाचार और पतिव्रत धर्म के रूप में स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्बन्ध के चारों ओर चाहे जितना भी धर्म लपेटा जाय उसके मूल में है एक ही बात, मनुष्य के लिये जीवन निर्वाह के उपायों की व्यवस्था करना, रोटी का प्रबन्ध करना और सृष्टि द्वारा मनुष्य को सन्तानोत्पत्ति के लिये खदेड़ जाने पर उसे सीमा में रखना.........।"

श्रीमान् के मित्र ने इतिहासज्ञ की बात काट दी—"अरे आप लोग चाहे जो कहिये, परन्तु यह तो मानना पड़ेगा कि हमारे बुजुर्गों ने बुद्धिमानी की, चाहे धर्म के रूप में ही की। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य समाज का जीवन असम्भव हो जाता !"

बीच में टोक दिये जाने से इतिहासज्ञ उत्तेजित होगये—"आप बात बिना सुने ही जवाब दे देते हैं·······पहले सुन तो लीजिये ! प्रश्न यह नहीं कि हमारे बुजुर्गों ने बुद्धिमानी की या नहीं ? मान लिया, वे बड़े बुद्धिमान् रहे। सवाल तो यह है कि हमें क्या करना है ? ब्याह और उत्तराधिकार द्वारा जीवन-निर्वाह के उपायों को वंश क्रम में सीमितकर, व्यक्ति के हितों के अनुसार उन्हें व्यक्ति के नियंत्रण में रखकर, किसी समय समाज में व्यवस्था की जो प्रणाली क़ायम की थी, वह अब क़ायम नहीं रही·······।"

हाथ का अँगूठा दाँत से काटते हुए श्रीमान् ने प्रश्नात्मक भाव से इतिहासज्ञ की ओर देखा। उत्तर देने के लिये दोनों हाथ फैला इतिहासज्ञ बोले—"आप देखते हैं इस समय ९९ फ़ीसदी व्यक्तियों के पास जीवन-निर्वाह के साधन नहीं रहे। और वे लोग पैदावार पर व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रथा के कारण किलबिला रहे हैं। विवाह साधन था व्यक्तिगत या पारिवारिक रूप से जीवन-निर्वाह के उपायों को पैदा करने वाली व्यवस्था की रक्षा करने का। सो वह व्यवस्था तो अब रही नहीं !"

श्रीमान् ने प्रश्नात्मक भाव से आँखें फैलाकर इतिहासज्ञ की ओर देखा मानो पूछ रहे हैं, सो कैसे ?

"देखिये न, पैदावार के साधनों को मैशीन का रूप देकर पैदावार का तरीक़ा बदल दिया गया। इस ढंग में जहाँ हज़ारों आदमी एक साथ पैदावार करते हैं और वह पैदावार हज़ारों लाखों के काम आती है, पैदावार का व्यक्तिगत और पारिवारिक ढंग कैसे चल सकता है ? यह

व्यवस्था पैदावार के फल को, पैदावार के काम में परिश्रम करनेवालों को नहीं बाँटती। इस पैदावार के मूल्य को कुछ एक लोग ही झपट लेते हैं। ज़रूरत है कि पैदावार के ढंग में आ गये परिवर्तन को स्वीकार किया जाय............"

बीच में टोककर दार्शनिक बोले—"समाज के जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों की उत्पत्ति के तरीक़े में समाजवाद आ गया है, सब झंझट पैदा होता है उसे स्वीकार न करने में........"इन्हें टोक दिया विशालाक्षी देवी ने,—

"तो इससे स्त्रियों की स्थिति का क्या मतलब?"

कुछ निराशा के से स्वर में इतिहासज्ञ ने उनकी ओर देखकर पूछा—"स्त्रियों की स्थिति का क्या मतलब? क्या स्त्रियाँ समाज का अङ्ग नहीं? समाज जब वैयक्तिक और पारिवारिक सम्पत्ति की प्रणाली या पूँजीवाद पर चलेगा तो स्त्री को मजबूरन इस व्यवस्था को चलाने का साधन बनकर रहना पड़ेगा। जैसे समाज की आरम्भ की अवस्था में मनुष्य, जब वह खेती करना नहीं जानता था, एक पशु पर अपने जीवननिर्वाह के साधन लादे फिरता था, उसी प्रकार व्यक्तिवाद या पूँजीवाद में परिवार का स्वामी पुरुष, स्त्री पर अपनी गृहस्थी लाद कर रहता है..............।"

श्रीमान के सहायक ताली बजाकर हँस दिये—"स्त्री आखिर पशु ही बनी न?"

श्रीमती जी ने क्रोध से मुख फेर लिया और उनकी भारी भरकम सहेली ने क्रोध में प्रत्युत्तर दिया—"पशु तो पुरुष हैं।"

अपनी व्याख्या के लिये स्त्रियों से कृतज्ञता पाकर इतिहासज्ञ ने विशालाक्षी देवी की ओर देखा। वे क्रोध न दिखा बात को समझने का यत्न कर रही थीं—"तो फिर........?" इन्होंने प्रश्न किया।

"तो फिर यहकि व्यक्तिवाद और पूँजीवाद की प्रथा टूट जाने पर

स्त्री पर से परवशता का बन्धन हट जायगा, वह आत्मनिर्भर हो जायगी। समाज के पुरुषों की ही तरह उन्हें भी स्वयम् कमा सकने का अवसर होगा।" विशालाक्षी देवी हाथ के बटुए को ज़ोर से दबा अधमुँदी आँखों से स्त्री स्वतंत्रता की कल्पना का सुख लेती रह गई। शायद उन्हें दिखाई दे रहा था,—बग़ल की छोटी सी छतरी को हिलाते हुए वे बड़ी तेज़ी से किसी दफ्तर की ओर चली जा रही हैं। जहाँ वे बड़े साहब की कुर्सी पर जा बैठेंगी। घर की सफ़ाई और बच्चे की रुलाई की उन्हें कोई चिन्ता नहीं। इनके इस सुख-स्वप्न को तोड़ डाला श्रीमान के मित्र ने। पूछ बैठे—"क्यों साहब, आप परिवार को ही तोड़ डालना चाहते हैं? यानी सर्वनाश हो जाय। परिवार न रहेगा तो रहेगा क्या?"

दार्शनिक की सहायता के लिये इतिहासज्ञ बोले—"परिवार का नाश कर देने के लिये कौन कहता है?''''कहना तो यह है कि आज आपके देश और समाज में दस-पाँच परिवार जीवन के सब साधन समेट बैठे हैं और शेष करोड़ों परिवार साधन हीन हो मोहताज बन रहे हैं, इसके स्थान पर पैदावार के साधनों को समाज के सब परिवारों की साँझी सम्पत्ति बना दीजिये! यानी आर्थिक दृष्टि से सम्पूर्ण समाज एक परिवार हो और स्त्री पुरुष सन्तान की दृष्टि से अपने परिवार आप जैसे चाहे बनाये रहिये............।"

दार्शनिक अपनी बात स्वयम् ही कहना चाहते थे इसलिये फिर बोले—"सर्वनाश तो साहब अब हो रहा है। परिवार तो आपने बना रखे हैं परन्तु उत्तराधिकार या विरासत के रूप में निर्वाह के साधन उनके पास कहाँ हैं?"

"समाज में तो सब कुछ है और जितना है उससे बहुत अधिक हो सकता है। तो फिर व्यक्ति को साधन हीन परिवार की हथकड़ियों में बन्द रखकर उसका दम घोटने से लाभ?"

सबको चुप होते देख श्रीमतीजी ने मुस्कराकर प्रश्न किया—"अजी

परिवार नहीं होगा तो बच्चों को पालेगा कौन ?"—और श्रीमान के मित्र भाभी की बात में संशोधन करने के अधिकार से हँसकर बोल उठे—"बच्चे होंगे कहाँ से ?"

इस असुविधाजनक प्रश्न का उत्तर दिया, इतिहासज्ञ ने —"जब स्त्रियाँ होंगी और पुरुष होगा तो बच्चे तो हो ही जायँगे। परन्तु वे बच्चे माँ-बाप के अपराध का दण्ड नहीं बनेंगे ! माँ-बाप की साधनहीनता के कारण कुचले नहीं जायँगे। वे सम्पूर्ण समाज-परिवार की सन्तान होंगे और समाज की शक्ति में उन बच्चों के लिये जो कुछ करना सम्भव होगा, किया जायगा.......।"

उत्साह और आवेश से इतिहासज्ञ व्याख्यान देने के ढंग पर बोलने लगे थे। बात कहाँ से कहाँ पहुँच रही है, ऐसी जगह जहाँ वूमेंस लीग के प्रस्तावों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, यह देख विशालाक्षी देवी बोलीं—"प्रश्न तो है कि भारत के मौजूदा समाज में स्त्रियों पर अन्याय न हो, उन्हें पुरुषों के समान अधिकार हो !"

"यह हो जो नहीं सकता।"—दार्शनिक ने अपना सिगरेट नीचे करते हुए उत्तर दिया।

कुछ बिगड़ कर श्रीमती की सहेली ने कहा—"हो कैसे नहीं सकता ; विलायत में है।"

"कैसे कहती हैं आप विलायत में है ?" दार्शनिक ने अधिकार के स्वर में पूछा।—"वाह, सब कहते हैं, वहाँ स्त्रियाँ पुरुषों की दास थोड़े ही हैं। वे सब काम करती हैं !" श्रीमती की सहेली ने उत्तर दिया और अपने भारी शरीर को कुर्सी की पीठ पर निढाल छोड़, विजय की मुद्रा से निश्चिन्त हो गईं।

दार्शनिक तेज़ हो गये और बोले—"कहते होंगे जिनके आँखें नहीं। स्त्रियों को भीड़ में जगह दे दी जाती है, या पति स्त्री का कोट उठाकर चलते हैं, इसलिये स्त्रियों को स्वतंत्र या उनका समान अधिकार

समझ लिया ? मुआफ़ कीजियेगा, हमने देखा है, बहुत से मेम और साहब लोग अपने 'पिकेनीज़' कुत्तों को गोद में उठाकर चलते हैं, मोटर में बराबर की सीट पर तो सभी बैठा लेते हैं। इससे क्या उनके कुत्ते स्वतंत्र समझे जायँगे ?"

श्रीमती की सहेली ने क्रोध में अपने चारों ओर देखकर पूछा—"हमारा पर्स कहाँ गया ?" मानो अब किसी भी हालत में वे बैठ नहीं सकेंगी। परन्तु श्रीमान और उनके साथी इतने प्रसन्न हो रहे थे कि किसी भी प्रकार यों सभा भंग कर देना उन्हें मंजूर न था। ऊँचे स्वर में उन्होंने आग्रह किया—"अजी बैठिये, अजी बैठिये, अभी तो देखिये पानी कितनी ज़ोर से पड़ रहा है" शोर मच गया।

इस सब शोर की कुछ भी चिन्ता न कर दार्शनिक कहते चले गये—"योरुप में स्त्रियों को ख़ाक स्वतंत्रता और समान अधिकार है। पुरुषों के बराबर मेहनत करके भी उन्हें पुरुषों के बराबर मज़दूरी नहीं मिल सकती। बीसियों पेशे ऐसे हैं, जिनमें उन्हें काम करने का अवसर नहीं। सम्पत्ति की भी वे उत्तराधिकारी नहीं हो सकतीं। वंश पुरुष के ही नाम से चलता है, स्त्री के नाम से नहीं। माना, कुछ स्त्रियाँ ब्याह न करके स्वतंत्र रोज़ी चलाती हैं परन्तु ऐसी स्त्रियों को सदा ही बुढ़ापे का भय सताता रहता है कि जब हाथ पैर नहीं चलेंगे तब क्या होगा ? अपनी इच्छा से सन्तान की माता बनने का अवसर या अधिकार उन्हें नहीं"""""। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि सन्तानोत्पत्ति स्त्री-पुरुषों का एक बहुत बड़ा काम और अधिकार है। पुरुष की सम्पत्ति बने बिना यह अधिकार योरुप की स्त्रियों को भी नहीं। और यदि कोई स्त्री ऐसा दुस्साहस करे भी तो संतान के बोझ को सम्भालेगी कैसे ? ख़ास कर प्रसव के समय से पहले और बाद तीन चार मास उसकी जिम्मेवारी कौन लेगा ? इतनी स्वतंत्रता इन्हें ज़रूर है कि वे तलाक़ दे सकती हैं। यह कौन बड़ी स्वतंत्रता है ? इस पुरुष को मालिक

न समझा दूसरे को समझ लिया ! समस्या को व्यक्तिगत रूप से देखने से काम नहीं चलता उसे सामाजिक रूप से ही देखना चाहिये।"

इस संकोच के विषय को भी दार्शनिक इस गम्भीरता से कह गये कि देवियों को नाक-भौं चढ़ाने का अवसर न मिला। बल्कि विशालाक्षी देवी ने पूछा—"तो क्या समाजवाद में स्त्रियों की यह सब कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी ?"

"बेशक !" बड़े तपाक से दार्शनिक ने उत्तर दिया—"स्त्री जिस परिवार का अंग होती है, वह परिवार स्त्री की सब कठिनाइयों में सहयोग देता है या नहीं ? उन्हें झेलता है या नहीं ? इसी प्रकार स्त्री जब समाज के परिवार का अंग होगी, और समाज को नई संतान के रूप में अपनी रक्षा करनी होगी, समाज सब कुछ झेलेगा ही। अन्तर इतना है, आज स्त्री आर्थिक रूप से एक व्यक्ति पर निर्भर रहने को मजबूर है, आर्थिक रूप से उसकी स्वतन्त्र या व्यक्तिगत हैसियत नहीं है। समाजवाद में स्त्री की आर्थिक हस्ति पुरुष के समान ही व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र होगी और सामाजिक रूप से वह पुरुष के समान ही समाज पर निर्भर करेगी ?"

"क्यों साहब, समाजवाद में तो स्त्रियाँ सामाजिक सम्पत्ति होंगी न ?" श्रीमान् के सहायक ने संकेत पूर्ण मुस्कराहट से होंठ काटते हुए पूछा—"स्त्रियों के लिये तो और भी मुसीबत है, कढ़ाई से उछलीं, भट्ठी में गई ?"

विशालाक्षी देवीजी ने चौंककर उनकी ओर देखा। इतिहासज्ञ अपने विचारों का प्रभाव इन देवीजी पर पड़ते देखकर संतुष्ट हो रहे। इनके यों चौंकने से वे घबराये, तुरन्त बोल उठे—"समाजवाद में तो व्यक्तिगत सम्पत्ति का सवाल ही न रहेगा तो स्त्री ही कैसे किसी की सम्पत्ति बन जायगी ? जैसे पुरुष समाज का अंग होगा वैसे ही स्त्री भी समाज का अंग होगी।"……"सभ्यता के विकास से स्त्री और पुरुष इसी प्रकार समान हो सकते हैं।"

अपनी की हुई सब नेकी का फल यों नदी में बहा जाता देख श्रीमान बहुत संकोचपूर्ण ढंग से बोले और बोले भी तो अपने कारोबार की ही बात। उन्होंने कहा—"देखिये आपने कहा था न कि समाज के लिये आवश्यक पैदावार के काम में पुरुष अधिक काम कर सकता है !......तो क्या समाजवाद में यह बात न रहेगी ?"

ऐसी लाजवाब बात कह देने के भरोसे अभी वे अपनी गर्दन ऊँची भी न कर पाये थे कि तड़ाक से दार्शनिक ने उत्तर दिया—"शारीरिक शक्ति का इतना महत्व था मनुष्य समाज की आरंभिक अवस्था में। आज मैशीन का ज़माना है। पुरजा घुमाकर इंजन को सभी समान रूप से चला सकते हैं। मैशीनगन की ताक़त स्त्री के हाथ से चलने पर कम नहीं होजायगी। स्त्री की शारीरिक निर्बलता को मैशीन दूर कर चुकी है। रूस में स्त्रियाँ क्या नहीं कर रहीं ? और फिर यदि परिश्रम के काम में स्त्री कहीं पुरुष से पौन हो भी गई तो सन्तान प्रसव का जो काम समाज के लिये वह करती है उसे भी तो नहीं भुला दिया जा सकता ? सामाजिक दृष्टि से उसका महत्व पुरुष से कम नहीं !"

"यानी भारत भी रूस हो जाय ?"—श्रीमान के सहायक ने प्रश्नात्मक ढंग से सिर हिलाते हुए पूछा और फिर सब लोगों की ओर हाथ फैलाकर कहा—"साहब यह चाहते हैं रूस की सभ्यता !....जिसमें शादी-ब्याह कुछ न हो !....जो चाहे जिसकी कमर में बाँह डालकर चल दे।"

श्रीमतीजी और उनसे अधिक उनकी भारी भरकम सहेली यों सकपका गईं, मानों किसी की बाँह उनकी कमर पर आया ही चाहती है ! दोनों हाथ मलते हुए श्रीमतीजी की सहेली ने कहा—"हाय, राम राम !" और श्रीमतीजी गाल पर उँगली रख आशंका से दार्शनिक की ओर देखने लगीं।

इतिहासज्ञ ने अपने स्वर को खूब ऊँचा कर कुर्सी की गद्दी पर घूँसा मारते हुए कहा—"बिलकुल ग़लत कहते हैं आप ! रूस में ब्याह

रजिस्ट्री से होता है। आपको शायद मालूम नहीं कि रूस भर में कोई वेश्या नहीं। कोई स्त्री लाइसेंस लेकर वेश्यावृत्ति नहीं कर सकती ?"

श्रीमानजी के सहायक और भी ऊँचे स्वर में बोले—"अरे वहाँ लाइसेंस की ज़रूरत ? वहाँ तो सभी वैसे ही हैं।"

"हाय हाय, गाज पड़े ऐसी सभ्यता पर।"—श्रीमतीजी ने हाथ की उँगलियाँ छिटकाकर कहा।

दार्शनिक ने आगे बढ़कर पूछा—"वेश्या से आपका मतलब ?" श्रीमानजी के मित्र बिगड़ उठे, बोले—"आप तो दूध पीते बच्चे हैं न ! अभी आप पूछ रहे थे ब्याह का मतलब ? अब आप पूछ रहे हैं, वेश्या का मतलब ?"

चारों ओर फूट पड़ी विद्रूप की हँसी की कुछ परवाह न कर दार्शनिक वेश्या का मतलब स्वयम् ही बताने लगे—"वेश्या कहते हैं उसे, जो अपना पेट भरने के लिये अपना शरीर बेचे ! ऐसा करने को स्त्री तभी विवश होती है जब जीवन-रक्षा का कोई दूसरा उपाय उसके पास न हो ! मानते हैं आप ?"

"जी····"—धमकी के स्वर में श्रीमान् के मित्र ने हाथ की मुट्ठी से ठोड़ी को सहारा देकर स्वीकार किया।

अपनी बात मनवा लेने के संतोष में अपनी पीठ सोफ़ा की पीठ से सटाकर दार्शनिक बोले—"तो जनाब रूस की समाजवादी सरकार इस बात के लिये जिम्मेदार है कि देश भर में कोई भी पुरुष या स्त्री काम करने की इच्छा होने पर बे-रोज़गार नहीं रह सकता। इसलिये वहाँ किसी भी स्त्री को ज़िन्दगी की ज़रूरियात पूरी करने के लिये अपना शरीर किराये पर चढ़ाने की ज़रूरत नहीं हो सकती या किसी भी रूप में स्त्री पुरुष का लोहा मानने के लिये मजबूर नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में स्त्री जो कुछ करेगी या तो प्रेम के कारण या अपने निजी संतोष के लिये करेगी और उसके लिये जिम्मेवार होगी।"

विशालाक्षी देवी बहुत देर से चुपचाप तन्मयता से सुन रही थीं, संतोष सूचक एक लम्बी 'हूँ' उनके मुख से निकल गई तब उन्होंने अचकचा कर देखा कि किसी ने यह बात भाँप तो नहीं ली।

श्रीमान् के मित्र झुँझला उठे—"वाह साहब ख़ूब रही"......"स्त्रियाँ घण्टे-घण्टे भर में प्रेम बदलती फिरें।"

उत्तर देने के लिये दार्शनिक अपना मुँह खोल सकें इससे पहले ही श्रीमती ने दोनों हाथ मलकर कहा—"हाय-हाय ; आग लगे ऐसे प्रेम को।" और विशालाक्षी देवी विस्मय की विमूढ़ता में दार्शनिक के उत्तर की आशा में उनकी ओर देखने लगीं।

अंतिम दाँव लगा देनेवाले जुआरी की बे-परवाही से दार्शनिक ने कहा—"यदि स्त्री किसी को धोखा न देकर अपने हृदय की तृप्ति के लिये घण्टे भर प्रेम करना चाहती है तो वह कुलटा है और यदि वह अपने जीवन और अपनी संतान के जीवन-निर्वाह का कोई दूसरा उपाय न देख, या समाज के भय से अपना शरीर जन्म भर किसी पुरुष की आवश्यकता पूर्ति के लिये दे देती है तो वह सती है!"......"आप उस लड़की को क्या कहेंगे जो एक पुरुष को जाने-पहचाने बिना, उसे सौंप दिये जाने पर भय से या दूरदर्शिता से आँसू बहाती चल देती है? क्या अठारह-बीस बरस की लड़की जानती नहीं कि उसे किस काम में लाया जायगा? लड़की जानती है माँ-बाप आयुभर उसके जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। वह यह भी जानती है कि किसी की बने बिना संसार में रक्षा और गुजारा पाना उसके लिये कठिन है। वह यह भी जानती है कि किसी की सम्पत्ति उसे बना दिया जा रहा है और यदि वह उस पुरुष के अलावा किसी दूसरे की ओर आँख उठाती है तो वह निराश्रय हो जायगी। फटी जूती की तरह उसे कबाड़ के ढेर पर फेंक दिया जायगा। इस भय से जिस तरह का जीवन वह व्यतीत करती है, उसकी महिमा गाई जाती है, उसे साध्वी, पतिव्रता और सती कहकर

पुरुष पूजा करते हैं ताकि शेष स्त्रियाँ भी इस प्रकार के सम्मान के लोभ में पुरुषों की गुलामी को चुपचाप निभायें और वह स्त्री जो अपने हृदय के प्रेम या आकर्षण के प्रति ईमानदार रहकर किसी पुरुष को चाहती है, कुलटा है व्यभिचारिणी है। मजा यह है कि ऐसी स्त्रियाँ, जो पुरुषों की गुलामी से छूटने का दम भरती हैं, पूर्णतः एक ही पुरुष की सम्पत्ति बनकर साध्वी और पतिव्रता कहलाने में अपना सम्मान समझती हैं...... ...............।"

सब लोग दार्शनिक की इस आवेगमय व्याख्या को स्तब्ध होकर सुने जा रहे थे। परन्तु श्रीमती की सहेली ने शायद समझा कि स्वतंत्रता और समानता का दावा करनेवाली स्त्रियों की पति परायणता पर हमला हो रहा है और सब कुछ सह लेना शायद उसके लिये सम्भव होता परन्तु स्त्री के शरीर पर पति के एकछत्र अधिकार के प्रति शंका की बात सहन करना उनके लिये सम्भव न था। शरीर को सम्पूर्ण शक्ति से हिलाकर वे उठ खड़ी हुईं और बिगड़कर बोलीं—"हाँ पुरुष स्वयम् बड़े अच्छे होते हैं न ?...बड़े सच्चरित्र होते हैं न ?" क्रोध में तकल्लुफ़ से घर जाने की आज्ञा माँगने का भी ध्यान उन्हें न रहा। अपने ड्राइवर का नाम पुकारती हुईं वे दरवाजे की ओर बढ़ चलीं।

बहस आवश्यकता से अधिक हो चुकी थी। अवसर देख दूसरे लोग भी उठ खड़े हुए। बहस से यदि अभी तक कोई थका नहीं था तो दार्शनिक और इतिहासज्ञ ; कुछ अधिक सुन पाने की इच्छा शेष थी तो केवल विशालाक्षी के जिज्ञासु नेत्रों में। उनकी ओर देख, किसी दूसरे के सुनने न सुनने की पर्वाह न कर दार्शनिक ने कहा—"सच बात तो यह है कि स्त्रियाँ स्वतंत्रता नहीं चाहतीं। स्वतंत्रता लेने से सिर पर आ जाता है उत्तरदायित्व, दूसरे का भरोसा करने का अवसर नहीं रहता। स्त्रियाँ भारत के लिबरल कहलाने वाले राजनैतिक दल की भाँति हैं जो अँग्रेजों से स्वतंत्रता, जिम्मेवारी और स्वराज्य नहीं माँगते, माँगते हैं

केवल सहूलियतें। इसी प्रकार भारत की स्त्रियाँ भी स्वतंत्रता और जिम्मेवारी नहीं चाहतीं। चाहतीं हैं केवल रियायतें और सहूलियतें।"

इस लांछना का कोई उत्तर विशालाक्षी देवी ने न दिया। सभी लोग उठ खड़े हुए थे इसलिये उत्तर-प्रत्युत्तर के लिये अवसर भी न था। संकुचित से स्वर में उन्होंने दार्शनिक और इतिहासज्ञ से पूछा—"आप लोगों को फुर्सत और सुविधा हो तो कभी हमारे यहाँ आइये न ?"

"हाँ जब कहिये·······?" उत्साह से दार्शनिक कहने जाही रहे थे कि उनके बगल में एक गुप्त घूँसा मारकर इतिहासज्ञ ने उत्तर देने की जिम्मेवारी अपने हाथ लेली और बोले—"देखिये संध्या को अक्सर बहुत जगह मिलना-जुलना रहता है। पहले से मालूम रहने से किसी दिन हो सकता है·······।"

"तो फिर अगले शुक्रवार की संध्या को पाँच बजे चाय आप हमारे यहाँ ही पीजिये, आप भी आइये !" दार्शनिक की ओर भी देखते हुए उन्होंने कहा। फिर कोई ग़लती न हो जाय, इस भय से दार्शनिक केवल सिर हिला कर रह गये।

निमंत्रण के मकान से अपने बसेरे पर लौटते हुए इतिहासज्ञ ने दार्शनिक को डांटा—"बड़े पोंगे हो जी तुम। ऐसे भुक्खड़ों की तरह कहीं निमंत्रण स्वीकार किये जाते हैं ?····बेटा, ऐसे भूखे बनोगे तो कोई दरवाज़े पर भी फटकने नहीं देगा ? रोब रखा जाता है हमेशा। चार दफ़े न····न····न····न करके तब हां !···········समझे ?"

---

५

## भगवान के कारिन्दे

चक्कर क्लब के दार्शनिक एक अजीब मुसीबत में फँस गये। मुसीबत भी ऐसी कि उसकी कल्पना कर पाना भी कभी सम्भव न था। उनकी उस मुसीबत के लिये दोष भी किसको दिया जाय? एक तरह से दार्शनिक को चाहिये था कि उन्हें मुसीबत में फँसानेवालों का धन्यवाद देते ठीक उसी तरह, जैसे कि ताँगेवालों के मुँह से अक्सर सुनते हैं— "आशिके नामुराद को लाज़िम है, ये दुआ करे। जिसने दिया है दर्दे दिल, उसका ख़ुदा भला करे!" कारण यह कि उन पर मुसीबत ढानेवालों के हृदय में उनके प्रति कल्याण की ही कामना थी। उस प्रेरणा का आधार हिंसा नहीं अहिंसा ही थी।

दार्शनिक को दर्दे-दिल तो हुआ नहीं, हुआ दर्द सिर। यह भी विश्वास करना ही पड़ेगा कि दार्शनिक को दर्दे सिर देनेवालों का भला ख़ुदा ने अवश्य किया होगा।

मामला यों हुआ कि भद्रजनों के जिस मुहल्ले में अढ़ाई रुपया माहवार किराये पर कोठड़ी लेकर दार्शनिक रहते हैं, उनमें भगवान की इच्छा से संसार की भलाई और परोपकार करने की भावना प्रबल रूप से जाग उठी। संसार में फैलते दुख-दारिद्रय और कष्ट का निवारण करने के लिये और फिर इस दुख मूल और नश्वर जगत् से छुट्टी पाने के बाद भगवान की कृपा संतत सुख पाने के लिये सज्जनों ने भगवान् की कृपा पाने का निश्चय किया। भगवान के इन भक्तों ने जब यह

समझ लिया कि संसार के सब दुखों का मूल भगवान को भुला देना ही है तो उन्होंने भगवान को याद करने का प्रबन्ध किया। यह प्रबन्ध ढिलमिल उत्साह-हीन ढंग से नहीं, विशेष उत्साह-पूर्ण तरीके से बड़े परिमाण में हुआ।

मोहल्ले के मन्दिर में कीर्तन होने लगा। रात के ग्यारह बजे तक कीर्तन होना मामूली बात है। मंगलवार की संध्या को हनुमानजी के भाग के कीर्तन से और शनिवार की रात, अगले सुबह जल्दी उठने की कोई चिन्ता न होने से यदि शुभ कार्य में रात का एक भी बज जाय तो साधारण-सी बात थी। दार्शनिक जैसे संसारिक बुद्धि के एक-आध आदमी ने दबे स्वर में अपना संकट जताने का यत्न किया कि मुहल्ले में कीर्तन के उत्साह के कारण नींद नहीं आ पाती और सुबह तड़के नौकरी की ड्यूटी बजा सकना कठिन हो जाता है। परन्तु संसार का भला करने पर कमर बाँधे कीर्तनकारियों की लाल आँखें देख उन्हें चुप हो जाना पड़ा। इस प्रार्थना का परिणाम यह हुआ कि कीर्तन का स्वर पहले से भी ऊँचा हो गया। घड़ियाल पहले की अपेक्षा अधिक समय के लिये और अधिक बल से पीटे जाने लगे।

कीर्तन करनेवालों में कुछ व्यक्ति आसाधारण रूप से धर्मप्राण थे। कीर्तन के कारण उनके कंठ भर्राये रहते, उनींदी आँखें लाल रहतीं। इनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति की बात भूल, सत्संग में सम्मिलत होनेवाले सज्जन इनका विशेप सम्मान करते। दिन में बीसियों बेर उन्हें 'जयरामजी' की जाती। जयरामजी की मात्रा के साथ ही इन सज्जनों का धर्मोत्साह बढ़ता जाता। इन उत्साही सज्जनों ने कहा—"इतना बड़ा मुहल्ला है परन्तु क्या बात है कि सत्संग में मन्दिर भी पूरा नहीं भर पाता। मुहल्ले के प्रत्येक व्यक्ति को कीर्तन के सत्संग में सम्मिलित होना चाहिये।"

कीर्तन सभा का यह निर्णय ले मुहल्ले की पंचायत जब दार्शनिक

तक पहुँची तो उन्होंने उत्तर दिया—"भगवान की भक्ति भी क्या ज़बरन कराई जा सकती है ?"

एक सज्जन जिनके माथे पर—रविवार के दिन दफ्तर में साहब का सामना होने का भय न होने के कारण—पर्याप्त चंदन पुता हुआ था, आगे बढ़कर बोले—"भक्ति जबरन करवाने का क्या मतलब ? यदि किसी का पड़ोसी ग़लत राह पर चलता हो तो क्या उसे ठीक राह पर नहीं लाना चाहिये ?"

दार्शनिक को चारों ओर से घेर कर खड़े सज्जनों ने एक स्वर से कहा—"हाँ-हाँ क्यों नहीं ? ठीक तो है ! एक पापी के बोझ से नाव डूब जाती है। भगवान की भक्ति में ज़बरदस्ती कैसी ? वह तो सबको करनी ही चाहिये। उसमें तुम्हारा ही भला है।"

चारों ओर खड़ी भीड़ को कतराई दृष्टि से देख दार्शनिक ने पूछने का साहस किया—"हमारा उसमें क्या भला है पण्डितजी महाराज ?"

इस विचित्र और अप्रत्याशित प्रश्न से चौंककर चन्दन-तिलकधारी सज्जन ने माथे पर अनेक त्योरियाँ डाल, उपस्थित जनता की सहानुभूति और सहायता अपनी ओर करने के लिये पुकारा—"तुम्हारा क्या लाभ है ? अरे जो सबका लाभ है सो तुम्हारा लाभ है। जिस भगवान ने तुम्हें जीव दिया, इस सृष्टि को बनाया और इसका पालन करता है, उस भगवान की भक्ति करने से लाभ नहीं ?.........दुख में सब सुमिरन करे, सुख में करे न कोय जो सुख में सुमिरन करे, तो दुख काहे को होय ? भगवान को भुला देने के पाप का ही तो फल है कि सब दुख होते हैं............"—दोनों बाहें फैलाकर इन महाशय ने कहा।

"भगवान को स्मरण करते रहें तो दुखी नहीं होंगे ?"—दार्शनिक ने पूछा।

"दुखी काहे को होंगे ? भगवान सर्वशक्तिमान हैं ? अपने भक्तों के दुख वे सदा दूर करते हैं। वे बड़े दयालू हैं। माता, पिता, पुत्र, दोस्त,

मित्र यह सब नाते झूठे हैं। भगवान ही एकमात्र सखा हैं।"—इन तिलकधारी महोदय ने दार्शनिक को आश्वासन दिया।

"भगवान सर्वशक्तिमान और दयालू हैं तो यह सब दुख दारिद्रय, अकाल पड़ना, भूकम्प आ जाना, युद्ध में लाखों आदमियों का संहार अपनी शक्ति से वे क्यों नहीं रोकते ?"—दार्शनिक पूछ बैठे।

एक दूसरे सज्जन ने उत्तर दिया—"यह सब तो हमारे ही पाप-कर्मों का फल है ? लोग पाप न करें तो यह सब दुख काहे को हों ?"

"यदि अपने कर्मों से ही सुख-दुख होता है तो भगवान का नाम रटने की अपेक्षा सुख देने वाले काम ही क्यों न किये जाँय ? सुख-दुख अपने ही किये का फल है तो भगवान करते क्या हैं ?"—उपस्थित लोगों की सहनशीलता से साहस पाकर दार्शनिक बोले।

"भगवान कर्मों का फल देते हैं ?"—एक सज्जन ने उत्तर दिया।

"फल देते हैं ?" दार्शनिक ने फिर पूछा—"भैया, जब करनी अपनी है तो भगवान क्या देते हैं ? जब राई-रत्ती कर्म का ही फल मिलता है तो उसमें भगवान की दया का क्या सवाल ? और उनकी भक्ति से लाभ क्या ? यदि भगवान की भक्ति करने से बिन जोते खेत में फसल हो सके, पड़ता हुआ ओला भगवान का नाम लेने से थम जाय, जख्म लगने पर भगवान का नाम लेने से भर जाय तो दुनियाँ को भगवान की भक्ति का उपदेश देने का कष्ट आपको करना न पड़े। लोग दिन भर भगवान की ही भक्ति किया करें।"

दाईं ओर से अपने मित्र इतिहासज्ञ को कामरेड और दूसरे दो एक कांग्रेसी महाशयों के साथ आते देख साहस से स्वर ऊँचा कर दार्शनिक बोले,—"आप कहते हैं, भगवान सर्व शक्तिमान हैं, उनकी इच्छा पर संसार का बनना-बिगड़ना निर्भर करता है और तमाशा यह है कि भगवान की वकालत और सिफ़ारिश करने आप आये हैं। यदि भगवान को ऐसी कुछ ज़रूरत थी तो अपना संदेश वे स्वयम् हमें भेज देते।"

मोहल्ले के एक सज्जन ने चिढ़कर उत्तर दिया—"ऐसी ही ज़रूरत भगवान को पड़ी है न तुम्हें सन्देश भेजने की ? भगवान को भूलोगे, खुद दुख भोगोगे ; नरक में जाओगे।"

बहस का मैदान तैयार देख इतिहासज्ञ कूद पड़े, बोले—"अजी साहब, भगवान को ज़रूरत न सही, आपको तो थी ही। बल्कि भगवान से अधिक दया आपके ही हृदय में है कि भटकते को राह दिखाने तो आये। भगवान तो इतना भी नहीं करते !"

"करते कैसे नहीं ?"—तिलक धारी सज्जन ने बीचमें ही टोका,— "शुभ कार्य की प्रेरणा भगवान ही तो करते हैं।"

सहायकों के आजाने से दार्शनिक जोर से चहकने लगे—"शुभ कार्य की प्रेरणा भगवान करते हैं तो अशुभ कार्य की प्रेरणा कौन करता है महाराज ?"

निशंक भाव से महाराज ने उत्तर दिया—"वह भी भगवान की ही लीला से पैदा होती है। वे तो लीलामय हैं, लीला करते हैं। देखो दुष्ट दुर्योधन और रावण के पाप का दण्ड देने के लिये भगवान ने उनकी बुद्धि पहले हर ली !"

"धन्न हो महाराज !"—हाथ जोड़ इतिहासज्ञ बोले—"पहले बुद्धि हरकर मनुष्य से पाप करवाना और फिर उसे पाप का दण्ड देना। यह तो दया नहीं घोर अन्याय है। और यदि भगवान अपनी लीला के लिये अन्याय करके ही दिल बहलावा करना चाहें तो भाई उनकी भक्ति किये से भी कुछ होने का नहीं।"

इतिहासज्ञ के साथ आये कांग्रेसी महाशय ने हाथ उठाकर कहा— "भगवान किसी के मन में पाप पैदा नहीं करते ! यह तो पाप से घिरी मनुष्य की बुद्धि है, जो उसे पाप की ओर ले जाती है। भगवान की भक्ति से मनुष्य बल्कि पाप से बचा रहता है। भगवान की भक्ति का यही तो उद्देश्य है कि मनुष्य पाप से दूर रहे।"

इस उत्तर से इतिहासज्ञ का समाधान न हुआ। वे फिर पूछ बैठे—"पाप को भगवान पैदा नहीं करते तो करता कौन है? आखिर सृष्टि के आरम्भ में जब किसी आदमी ने पहले पहल पाप किया होगा तो ऐसा करने की प्रेरणा उसे कहाँ से हुई?"

इन्हें टोककर दार्शनिक ने प्रश्न किया—"देखिये, भगवान की इच्छा बिना तो कुछ हो नहीं सकता। मनुष्य का मन और आत्मा भी तो भगवान का ही बनाया हुआ है। इस मन में पाप की प्रेरणा उठती है तो इसका कारण है कि भगवान ने उसे बनाया ही ऐसा है। सब प्रेरणा भगवान की इच्छा से ही उठती है। सर्वशक्तिमान भगवान चाहते तो मनुष्य के लिये ऐसा मन और आत्मा गढ़ते जिसमें पाप घुस न सकता। भगवान दयामय हैं तो उन्हें मनुष्य का मन-आत्मा 'पापप्रूफ़' बनानी चाहिये थी। तब यह संसार इतना दुःख-क्लेश और हिंसा पूर्ण काहे को होता?"

कांग्रेसी महाशय ने कहा—"देखिये बुद्धि भी तो मनुष्य को भगवान ने ही दी है कि भले-बुरे को समझ सके। और मनुष्य को स्वतंत्र बनाया है कि अपना रास्ता चुन सके!"

दार्शनिक ने हाथ उठाकर कहा—"सुनिये सुनिये, यदि मनुष्य की बुद्धि पाप स्वयम कर सकती है तो पुण्य भी स्वयम ही कर सकती है। यदि मनुष्य को सुख, दुख, सफलता, असफलता अपने कर्मों के अनुसार होती है तो भगवान की भक्ति का कुछ फायदा नहीं रह जाता, उनकी दुहाई देने से मतलब....?"

कामरेड अब तक बोलने का अवसर न पा कमर पर हाथ रखे चुप खड़े थे, सहसा बीच में बोल उठे—"अजी भगवान कोई हों भी? यों ही खामुखाह ढकोसला बना है!"

इनकी बात से विस्मित होकर तिलकधारी सज्जन क्रोध से बोले—"अरे मुँह में कीड़े पड़ जायँगे!"

उनके साथी ने क्रोध की अपेक्षा दलील का सहारा लेते हुए

कहा—"वाह साहब भगवान नहीं हैं तो इस संसार को ; सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी को किसने बनाया ? तुम्हें किसने बनाया ?"

इस सीधी चोट से कामरेड कुछ भी भयभीत न हुए, सीना तानकर बोले—"और फिर भगवान को किसने बनाया ?"

"वाह, भगवान को भी कोई बनाता है ?"—इन महाशय ने प्रश्न द्वारा उत्तर दिया—"भगवान ही तो सबको बनाते हैं, उन्हें कौन बना सकता है ? भगवान स्वयम बने हैं, और सदा से हैं।"

"आपने कह दिया, भगवान ही सबको बनाते हैं; सदा से हैं।"—कामरेड ने स्वर ऊँचा कर उत्तर दिया—"हम कहते हैं यह दुनिया भी सदा से ही है और स्वयम बनी है और जो कुछ करता है, मनुष्य करता है। ईश्वर को भी मनुष्य ने ही बनाया है।"

कामरेड की इस बात पर विश्वास न कर आस-पास के सज्जनों ने अविश्वास से सिर हिला दिया। अवसर देख तिलकधारी सज्जन के सहायक बोले—"ईश्वर को मनुष्य क्या बनायेगा ? मनुष्य का बनाया यह सब खेल खोखला है। मनुष्य में हिम्मत हो तो एक तिनका तक तो बना दे !"

कामरेड इस सार्वजनिक अविश्वास और विरोध से भी दबे नहीं। उन्होंने हाथ का घूँसा ऊपर उठाकर कहा—"तिनका क्या बना दे ? यह सब फसलें कौन बनाता है ? यह बड़ी-बड़ी मैशीनें कौन बनाता है, यह हवाई जहाज़, रेडियो कौन बनाता है ? अरे परमेश्वर तो बनाता है एक घोड़े की ताक़त का जानवर और मनुष्य बनाता है, लाख घोड़े की ताक़त का इंजन............!"

प्रश्न करनेवाले सज्जन ने हाथ की उँगलियों की चोंच बना अपनी बात की बारीक़ी की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—"सुनिये सुनिये, लाख घोड़े की ताक़त की बात जाने दीजिये। मनुष्य को अपनी ताक़त का इतना ही भरोसा है तो वह मामूली सी मक्खी या मच्छर तो पैदा करके दिखा दे.............?"

दोनों हाथ उठाकर इतिहासज्ञ बोले—"जी हाँ बस ठीक है। भगवान का काम है, मच्छर, मक्खी, खटमल बनाना और मनुष्य का काम है इन्हें मारना !"

तिलकधारी बोले—"भगवान की इच्छा बिना मनुष्य क्या कर सकता है ?"

"तो फिर क्या भगवान यों मुर्गे लड़ा-लड़ा कर तमाशा देखा करते हैं ?"—इतिहासज्ञ ने उँगलियाँ चलाकर पूछा। तिलकधारी ने निसंकोच उत्तर दिया—"यह भगवान की लीला है, इसे मनुष्य नहीं जान सकता।"

"आपका मतलब है"—दार्शनिक ने पूछा—"जो कुछ मनुष्य जान नहीं सकता, कर नहीं सकता, उसे करनेवाला भगवान है। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य का असामर्थ्य और उसका अज्ञान ही भगवान है और उसका विश्वास भगवान है ?"

हाथ चलाकर कामरेड बोले—"अजी इसका मतलब तो यही हुआ कि भगवान कुछ नहीं है।"

"वाह भगवान हैं कैसे नहीं।"—तिलकधारी सज्जन ने एक बार फिर क्रोध के स्वर में असंतोष प्रकट किया—"भगवान हैं नहीं तो सृष्टि के आरम्भ से भगवान चले कैसे आते हैं ? सब दुनिया सदा भगवान को मानती चली आई और यह कहते हैं, भगवान है ही नहीं !"

उसी तरह दुबारा हाथ चलाकर कामरेड फिर बोले—"वाह, दुनिया के मानने से क्या होता है ? दुनिया तो भूल को भी मानती चली आई है""दुनिया तो जाने कितने तरह के भगवानों को मानती आई है ?"" ऐसे मानने से क्या होता है ?""आदमी की अक्ल भी तो कोई चीज़ है ?"

"कितने तरह के भगवानों से क्या मतलब ?"—मोहल्ले के एक दूसरे सज्जन ने कहा—"भगवान क्या कई तरह के होते हैं। भगवान तो एक हैं।"

"कैसे कह सकते हैं आप भगवान एक हैं ?"—दार्शनिक ने टोका—"हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों के भगवान में भेद है। अफ्रीका के जंगलियो और कोल-भीलों के भगवान कुछ और ही ढंग के हैं। दूर क्या ; यहीं देखिये, कोई भगवान कहते हैं, भैंसा या बकरे की बलि दो तो हम प्रसन्न होंगे। कोई भगवान कहते हैं, मच्छर, खटमल और पिस्सू मारोगे तो हम नाराज़ हो जायँगे। कोई भगवान सातवें आकाश में दरबार लगाते हैं तो कोई घट-घट व्यापक रहते हैं। कोई भगवान अपने भक्तों को प्यार करते हैं और अपने सामने सिर न झुकाने-वालों को दण्ड देते हैं। एक भगवान हैं जो मनुष्य की तरह नाक कान रखते हैं, दूसरे अग्नि वायु की तरह हैं और एक बिलकुल निराकार हैं। कोई भगवान हैं जो बिलकुल न्यायप्रिय हैं, खुशामद और भक्ति की बिलकुल परवाह नहीं करते। सख़्त और बेमुरव्वत हाकिम की तरह इनाम और सज़ा दिये जाते हैं। और इस ज़माने के एक नये भगवान भी हैं। पिछले ज़माने में हिन्दुओं मुसलमानों का साझा नेता बन जाने के लिये दोनों को मिलाकर अकबर ने चलाया था दीनइलाही ! इस ज़माने में भी सबके धर्म विश्वास को अपने पीछे लगाने की कोशिश करनेवाले इस देश में हैं। इन्होंने बनाया है, चर्खा मारका भगवान। यह कहते हैं कि वेद, बाइबिल कुरान सबका उपदेश एक है। मानो अब तक किसी ने इन किताबों को समझा ही नहीं, समझनेवाले यही एक पैदा हुए हैं।

"इस चर्खा मार्का भगवान की पहचान बताई जाती है कि भगवान सत्य है और सत्य भगवान है ! भगवान प्रेम है और प्रेम भगवान है। सत्य क्या है, और प्रेम क्या है, सो सबका अपना-अपना गढ़ा हुआ अलग-अलग है, वैसे ही अपनी-अपनी ज़रूरत के मुताबिक सबका भगवान भी अलग-अलग है।"

इतिहासज्ञ के साथ जो गांधीवादी सज्जन आये थे उनका प्रयोजन था, आवारागर्द दार्शनिक को कांग्रेस के किसी काम में समेट कर ले

चलने का। इसलिये बहस में किसी ओर से बोलना उन्होंने उचित न समझा। परन्तु नर्खा-मार्का भगवान का यह सीधा ताना सुनकर वे बोलने से रह न सके—"देखिये भगवान को इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता और न तर्क मे पकड़ा जा सकता है। वह विश्वास और अनुभव का विषय है........"

दार्शनिक गंजी मुर्गी की-सी अपनी गर्दन उठा तत्परता से इनकी बात सुन रहे थे और बात हाथ में आते ही ऐसे झपटे जैसे मुर्गी 'किसी भी वस्तु' पर झपट पड़ती है। बोले—"जी जनाब! भगवान को इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता तो फिर उसका अनुभव आप किस राह करते हैं? अनुभव कर सकने या जान सकने के लिये शरीर में पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ हैं, जिनसे हम लोग भगवान को जान नहीं सकते, अनुभव नहीं कर सकते। आपके पास या आध्यात्मवादियों के पास वह छठी इन्द्री कौन है, जिससे आप भगवान को अनुभव कर लेते हैं?"

दृढ़ विश्वास से सीने पर हाथ रख गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया—"आत्मा"।

आत्मा के नाम से दार्शनिक ऐसे भड़कते हैं जैसे ताजी कुत्ता हिरन को देखकर। वे उछल पड़े—"आत्मा होता क्या है?"

इतिहासज्ञ डरे कि अनाकार आत्मा का प्रश्न बहस में आने से बहस बिलकुल असीम हो जायगी। इसलिये टोककर बीच में बोले—"आत्मा से भी आप किसी चीज़ को अनुभव करते हैं, यह विचित्र बात है?"

आपकी आत्मा आँख, कान, नाक, त्वचा, और जीभ से जो कुछ जान पाती है, वही सब आपका ज्ञान है, और इस ज्ञान के आधार पर ही आपका अनुभव, कल्पना और विश्वास चलता है। इसी के आधार पर आपके आत्मा की—हम उसे संस्कार या चेतना कह सकते हैं—दौड़ हो सकती है। इसी अनुभव, कल्पना और संस्कार के आधार पर भगवान की शक्ति और गुण निर्भर करते हैं?"—दार्शनिक ने कहा।

एक दूसरे कांग्रेसी सज्जन जो इस बहस को अब तक सर्वथा निरर्थक समझ रहे थे, बोले—"इसका मतलब तो यह हुआ कि भगवान की शक्ति भी उनके उपासकों की कल्पना के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है ?"

"बिलकुल यही तो बात है"—इतिहासज्ञ ने अपने हाथ की हथेली यों आगे बढ़ाकर कहा जैसे यह बात उनकी हथेली पर ही धरी हो—"आप भगवान का इतिहास पढ़ देखिये।" और उन्होंने सुनाना शुरू किया—"पहले जब मनुष्य की जानकारी बहुत कम थी, अपने गिरोह का मुखिया ही उसके लिये सब कुछ था, तब वह उसी की पूजा करता था। उसके मर जाने पर सुरक्षित स्थान में उसे गाड़ उसके फिर से जाग उठने की आशा में उसका आदर और पूजा करता था। हर एक गिरोह का देवता या भगवान अलग होता था, उसकी पूजा में शत्रुओं का रक्त भेंट किया जाता था। और यह देवता शत्रु के रक्त से तृप्त होकर अपने कबीले, कुनबे या गाँव को आशीर्वाद देता था और कहता था—शत्रुओं के रक्त की नदी बहा दो! लोग अपने-अपने भगवान के लिये लड़ते थे। भगवान की रक्षा मनुष्य करता था, मनुष्य की रक्षा भगवान नहीं। यह भगवान बात-बात पर रिश्वत लेता था! फसल बोने से पहले उसकी पूजा होती थी, फसल काटने पर उसकी पूजा होती थी। किसी स्त्री को भोग के योग्य हो जाने पर पहले इस भगवान का भोग लगता। सब वस्तुओं में यह भगवान अपना भाग बँटा लेते थे। पूजा ठीक से न होने पर रूठकर अपने उपासकों को दण्ड भी देते थे। आज दिन भी आपको इस प्रकार के भगवान और उसके उपासक मिल जायँगे देखिये असभ्य लोगों में········।"

"कम समझ और असभ्य लोगों की बात लेकर भगवान का मज़ाक बनाने से क्या लाभ ?"—कांग्रेसी महाशय ने गम्भीरता से कहा—"हम और आप तो कम समझ नहीं ?"

"वाह साहब !"—ताव के स्वर में दार्शनिक ने कहा—"कम

समझ या असभ्य किसी को आप कैसे कह सकते है ? इसका मतलब यह हुआ कि उन ग़रीबों के भगवान भी कम समझ और असभ्य हुए !"

बीच बचाव करते हुए गाधीवादी सज्जन ने कहा—"नही भाई भगवान तो एक ही हैं परन्तु जैसा मनुष्य का मन और आत्मा होती है वैसी ही प्रेरणा वह पाता है। इसीलिये त्याग और तप द्वारा मन को शुद्ध करना आवश्यक है। कहा तो है तुलसीदासजी ने—जाकी रही भावना जैसी ! प्रभु मूरति देखी तिन तैसी !!"

दार्शनिक इनके मुख की बात पकड़ने के लिये पहले से ही तैयार बैठे थे। तुरन्त बोल उठे—"सत्य वचन आपका। मन और आत्मा जैसा होता है वैसी ही उसे भगवान की प्रेरणा होती है। भगवान का कोई शरीर तो है नही। ये बेचारे प्रेरणा ही प्रेरणा तो हैं। अपनी बुद्धि और आवश्यकता के अनुसार उनकी प्रेरणा हो जाती है। वास्तव मे वे कोई वस्तु होते तो सब जगह प्रेरणा भी एक सी होती। यह प्रेरणा है केवल आपका विश्वास। यदि आपकी जानकारी बढ़ जाय और मन निस्वार्थ हो जाय तो भगवान के बन्धन से आप मुक्ति पा जाँय ! उसकी प्रेरणा की आपको आवश्यकता ही न रहे। यह भी क्या जादू है कि स्वयम बन्धन बनाकर मनुष्य उससे डरता है, उस बन्धन का ग़ुलाम हो जाता है !" अत्यन्त भावुकता से दोनो हाथ फैलाकर दार्शनिक ने विस्मय और दैन्य प्रकट करना चाहा परन्तु उनके इस भाव के प्रति किसी की सहानुभूति न हुई।

तिलकधारी सज्जन के साथी अँग्रेज़ी पढ़े लिखों के बहस में सम्मिलित हो जाने के कारण चुप हो गये थे; परन्तु अब उन्हे चुप होते देख, उन्होने उपेक्षा और निराशा से कहा—"धन्न है ऐसी बुद्धि ! भगवान् ने सारी सृष्टि को पैदा किया है और यहाँ कह रहे हैं कि मनुष्य ने भगवान को बनाया।" क्रोध मे पैर पटकते हुए वे बहस को महफ़िल छोड़ अपने मकान की ओर चले गये।

कांग्रेसी सज्जन ने कारोबारी ढंग से कहा—"यों दलीलबाज़ी करने के लिये आप चाहे बातें गढ़ डालिये परन्तु यह तो आपको भी मानना ही पड़ेगा कि ईश्वर का विश्वास मनुष्य को सदाचारी रखता है और समाज में इससे शान्ति और व्यवस्था क़ायम रहती है। यदि ईश्वर का भय न हो तो कितना अनर्थ मच जाय ? मनुष्य को धर्म और न्याय पर क़ायम रखनेवाली इस शक्ति से आप कैसे इनकार कर सकते हैं ?"

परिस्थिति अनुकूल देख गांधीवादी सज्जन ने समर्थन किया—"बिलकुल ठीक कहा आपने !" इतिहासज्ञ और दार्शनिक की ओर देख वे बोले—"आप देखिये, मनुष्य की शक्ति ही कितनी है ? वह कितना निर्बल है परन्तु संसार भर का संचालन करनेवाली शक्ति का आसरा पाकर वह न्याय और धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहुति दे देता है। इस शक्ति में विश्वास करने पर मनुष्य को संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी दबा नहीं सकती ! तोपों की मार, अग्नि वर्षा और अंग-अंग काटे जाने की यातना को भी मनुष्य सहर्ष सह जाता है। सत्य और धर्म की रक्षा के लिये इससे बड़ी और कौन शक्ति हो सकती है ?" इनकी बात समाप्त होते-होते सब लोगों के सिर इनकी बात के अनुमोदन में हिलने लगे।

कामरेड बीच में बोल उठे—"अच्छा यह तो बताइये, कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन में गांधीजी ने सत्याग्रहियों के लिये ईश्वर में विश्वास करने की क़ैद क्यों लगा दी ?"

गांधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया—"इसीलिये कि ईश्वर-विश्वास के सहारे ही मनुष्य निशस्त्र होकर भी बड़ी-से-बड़ी कठिनाई का सामना कर सकता है।"

"नहीं साहब ! यह बात नहीं।"—दार्शनिक ने आपत्ति की—"बात यह है कि ईश्वर की प्रेरणा में अंध विश्वास रखने वाले महात्मा गांधी जी के कार्य-क्रम में कोई सन्देह नहीं कर सकते क्योंकि गांधी जी

अपना कार्य-क्रम ईश्वर की प्रेरणा से निश्चित करते हैं। अपनी समझ से काम लेने वाले इस कार्यक्रम की सफलता के सम्बन्ध में तर्क करेंगे। यह गांधी जी की बुद्धिमत्ता है कि अपने काम में किसी को दख़ल नहीं देने देते।"—अपनी बात कह चुकने के बाद इन्होंने अनुभव किया कि इनकी बात किसी को पसन्द नहीं आई।

युक्ति के बजाय भावुकता को विजय पाते देख इतिहासज्ञ ने भी भावुकता के स्वर में कहा—"आश्चर्य यह है कि मनुष्य के मनुष्यत्व को कुचल देने के लिये कितना यत्न किया जाता है। मनुष्य अपनी बुद्धि से सदाचार और न्याय के नियम बनाता है। परन्तु उन्हें अपनी इच्छा और निर्णय समझकर वह उन्हें न मानेगा। मानेगा भगवान की इच्छा समझकर, भय से! आप ही बताइये, मनुष्य यदि स्वतंत्र रूप से न्याय और धर्म को अपने लिये उपयोगी समझकर उसका पालन करे तब वह अधिक बलवान होगा और अधिक उन्नति कर सकेगा; या जब वह किसी भय से मजबूर होकर पशु की तरह व्यवहार करेगा? ईश्वर की जिस महान शक्ति का सहारा विश्वास द्वारा पाकर आप बलवान बनना चाहते हैं, वह शक्ति आती कहाँ से है? पहले आप भगवान की शक्ति और इच्छा में विश्वास करते हैं, फिर आप यह विश्वास करते हैं कि जिसे आप न्याय और धर्म समझते हैं वह भगवान की इच्छा है, तब शक्ति पाते हैं। यों सिर के पीछे से बाँह घुमाकर नाक पकड़ने के बजाय आप सीधे ही नाक पर हाथ क्यों न धरें! क्यों न आप उस बात पर विश्वास करें, जिसे आपकी बुद्धि अनुभव और तर्क ईमानदारी से ठीक और उचित समझता है। व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़, अपने आप को मनुष्य समाज का अंग समझकर सोचिये तो आपकी बुद्धि स्वयं न्याय का मार्ग आपको दिखा देगी!" . . .

इतिहासज्ञ ने देखा उनकी तर्क पूर्ण बातों का प्रभाव जनता पर नहीं हुआ जितना की गांधीवादी सज्जन के भगवान की इच्छा और

भगवान की दया की दुहाई देने का हुआ। इसलिये उन्होंने कहना शुरू किया--"ईश्वर और विश्वास को बनाया था, मनुष्य ने भय से रक्षा और साहस पाने के लिये। अपने आपको एक निश्चित नियम पर चलाने के लिये। मनुष्य समाज के विकास और इतिहास में इसका उपयोग भी हुआ और मनुष्य समाज अपने परिस्थितियों के अनुसार इस ईश्वर के रूप और उसकी आज्ञाओं को बदलता आया। यह विश्वास समाज में व्यवस्था क़ायम रखने का उपयोगी साधन बन गया परन्तु हुआ क्या? जैसे समाज में बलवान श्रेणी ने जीवन निर्वाह के साधनों को अपने बश में कर लिया, उसी तरह समाज में व्यवस्था क़ायम रखने के इस उपयोगी साधन को भी समाज की बलवान श्रेणी ने अपने स्वार्थ के लिये हथिया लिया। इस साधन से वे सदाही अपने स्वार्थों और हितों की रक्षा करते रहे और आज भी कर रहे हैं। आज ईश्वर विश्वास का अर्थ है—अपने ही पापों के कारण दुख भोगने का विश्वास। आज इसका अर्थ है—चली आती शोषण की व्यवस्था को पलट कर हिंसा की चेष्टा न करना! इसका अर्थ है—अपने आपको भगवान के कारिन्दे समझने वालों की श्रेणी स्वार्थ की प्रेरणा के आगे सिर झुकाना!"

इतिहासज्ञ अभी और भी कहना चाहते थे परन्तु तिलकधारी सज्जन के साथी ने दोनों कान हाथ पर रखकर ऊँचे स्वर में कहा—"ऐसे नास्तिकों की तो बात सुनना भी पाप है?" और चल दिये।

कांग्रेसी और गांधीवादी सज्जन इतिहासज्ञ को साथ ले दार्शनिक के मुहल्ले में दार्शनिक के प्रभाव और लिहाज़ से कुछ मेम्बर कांग्रेस के बनाने आये थे, ऐसी परिस्थिति में उनका आना बेकार हुआ। विचारों के भेद को परवाह न कर वे मुस्कराहट से बन्देमातरम कर लौट गये।

६

## रामराज्य की पुड़िया

उस दिन 'अमीनुद्दौला-पार्क' में कोई एक बड़ा लेक्चर था। जमघट से लाभ उठाने का ध्यान एक मजमा लगानेवाले भलेमानस को आ गया। भीड़ से कुछ एक क़दम परे हट उन्होंने बाँसों की एक तिकोन खड़ी करदी। तिकोन के बीचोंबीच, एक नरकंकाल जैसा कि स्कूल में या डाक्टरी पढ़ाने के कालिज में विद्यार्थियों को दिखाया जाता है कड़ी से लटका दिया। सामने ज़मीन पर तीन-चार हरी-नीली प्यालियों में कुछ जल छोड़, स्पिरिट लैम्प जला, स्वयम एक काला चोगा पहन, वे भावपूर्ण मुद्रा में खड़े हो गये। विचित्र वस्तुओं के इस संयोग को देख चारों ओर कुछ तमाशबीन आ जुटे। इन महाशय ने व्याख्यान देना शुरू किया—

"हाज़रीन! आप क्या देख रहे हैं?" हड्डी के ढांचे की ओर संकेत कर उन्होंने कहा—"यह कोई ताज्जुब की चीज़ नहीं। हम सबकी हक़ीक़त यही है। यह जहान फ़ानी है। एक दिन हम सबका यही हाल होगा।" तर्जनी उँगली उठा धमकाने के से ढंग से वे बोले—"खूब देख लीजिये, यही हाल होगा!" सुनने वालों के रोंगटे खड़े होने लगे। उनका स्वर गम्भीर होगया—"यह चार दिन की चाँदनी है और फिर वही अन्धेरी रात! परमेश्वर ने, परवरदिगार ने हमें दुनिया में भेजा है कि कुछ कारे-सवाब करें और उन्नत नसीब हों। लेकिन हम गफ़लत में फँसकर हमेशा गुनाह किया करते हैं और दोज़ख में जायँगे!"

कुछ देर तक जन्नत और स्वर्ग के मजों और दोज़ख की तकलीफ़ों की तसवीर खींच उन्होंने समझाया—"सवाब और गुनाह यानी पुण्य और पाप इन्सान सब इस देह से ही करता है। इस देह का तन्दुरुस्त होना ज़रूरी है लेकिन आपका जिस्म क्या है? आपके दिल में धड़कन होती है, ज़रा दिल पर हाथ रखकर देखिये! आप उठकर खड़े होते हैं तो सिर में चक्कर आ जाता है। आँखों के आगे लाल, पीले नीले, हरे तारे दिखाई देने लगते हैं। बीवी के सामने से आपको आँखें नीची करके हटना पड़ता है! ग़ैरत है ऐसी ज़िन्दगी पर! चश्मे के बिना आप रात में देख नहीं सकते! क्यों?........" स्वर को खूब ऊँचा कर उन्होंने ललकारा—"क्योंकि आपका हाज़मा दुरुस्त नहीं, आपका जिगर ठीक हरकत नहीं करता, आपकी रगों में जुम्बिश नहीं! और हमारे बुज़ुर्ग सौ बरस की उम्र तक औलाद पैदा करते थे और एक सौ पन्द्रह बरह की उम्र तक रात के वक्त बिना चिराग़ के पढ़ सकते थे!........क्या वजह?"—पंजों के बल उचक, दोनों बाहें फैला उन्होंने जनता से पूछा और फिर स्वयम ही उत्तर दिया—"क्योंकि वे नापाक नहीं होते थे!"

अनेक हाव-भाव से व्याख्यान दे उन्होंने बताया—खुद उनकी हालत एक मुर्दे से बदतर हो गई थी। अपनी शर्मनाक ज़िन्दगी से तंग आकर एक दिन वह आत्म-हत्या करने हिमालय पहाड़ की बहुत ऊँची चोटी पर जा चढ़े। बस कूदा ही चाहते थे कि अपनी शर्मनाक ज़िन्दगी को ख़त्म कर दें, किसी ने उनकी कलाई को लोहे के शिकंजे में जकड़ लिया। घूमकर देखते हैं तो क्या!........बरफ़ की तरह सफ़ेद लम्बी जटा और दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये एक शख्स खड़ा है, जिसकी उम्र थी चार सौ-बीस बरस की लेकिन चेहरे पर सूरज का नूर! देखकर यह हक्के बक्के रह गये। जब होश आया तो बोले—"ऐ महात्मा मुझे मरने दे! मैं ज़िल्लत की ज़िन्दगी से तंग आ गया हूँ! उन महात्मा ने कहा—"ऐ शख्स, खुदकशी करना गुनाह है! तेरी ज़िन्दगी बन सकती है अगर तू

कौल करे कि बाक़ी तमाम ज़िन्दगी पाकीज़गी मे रहेगा और खुदा की राह में ग़रीबों की खिदमत मे गुजारेगा।"

व्याख्यान देनेवाले साहब ने कौल किया कि वह महात्मा का हुक्म मानेंगे। महात्मा उन्हें अपने साथ अपनी कुटिया मे ले गये। महात्मा ने एक बड़ी भारी चट्टान के नीचे से एक बूटी निकालकर तीन दिन तक उन्हे खिलाई। एक खूराक़ खाते ही उनकी नसो मे बिजली दौड़ गई और तबीयत में आया कि सौ मन का पत्थर उठा लें और बरगद के पेड़ को पकड़कर चीर डाले। तीन दिन के बाद जब वे बिलकुल चंगे होगये, महात्मा ने उन्हे हुक्म दिया कि जाओ अपने जैसे दूसरे बदकिस्मतो की ज़िन्दगी बचाओ।

उनका स्वर करुणापूर्ण हो गया—"अपनी मेहनत से कमाई दौलत को पैसा ऐंठने वाले डाक्टरों, हकीमो, वैद्यो और इश्तहारबाज़ों से बचाना चाहते हैं तो आइये.........।"

आख़िर उस बेशक़ीमत बूटी को लेकर वे दुनियाँ का भला करने आये हैं और वही बूटी कुल कीमत चार आना में!—सिर्फ़ लोगों की भलाई के लिये, देने के लिये उन्होंने कुछ पुड़ियाँ निकालीं। इस पुड़िया से दिमाग की कमज़ोरी, नसो मे पानी पड़जाना, जिस्म की नाताक़ती, दिलकी धड़कन, गुर्दे का दर्द, नज़र की खराबी, बदहज़्मी, ज़ुकाम, जिल्द की खाज सब आनन फ़ानन दूर हो जाता है.........कीमत सिर्फ़ चार आना फ़ी पुड़िया। खाने वाला परहेज़ मे रहे। सुबह के वक़्त मुँह जूठा करने से पहले ताज़े पानी से खाले।

लोगों को जेब से पैसे निकालने में झिझकते देख उंगली उठा उन्होंने जनता को होशियार किया—"याद रखिये, जिसे पुड़िया लेनी हो अभी लेले। वर्ना, एक दफ़े पुड़िया बेग में बन्द करदी जाने पर, फिर चार सौ रुपये हाज़िर करने पर भी नहीं दी जायगी।"

इस भीड़ में कांग्रेस का व्याख्यान सुनने आये अनेक खादी टोपी

धारी सज्जनों के साथ ही भाग्य से चक्कर क्लब के इतिहासज्ञ, दार्शनिक और कामरेड भी खड़े थे। कामरेड को पुकार सबको सुनाने के लिये इतिहासज्ञ ने कहा,—"यार कामरेड,लेलो न यह रामराज्य की पुड़िया!"

"राम राज्य की कैसी पुड़िया?"—कामरेड ने विस्मय प्रकट किया।

"अरे रामराज्य भी नहीं जानते? जैसे इन हकीम साहब की तिलस्मी पुड़िया में सब जिस्मानी बीमारियों की दवा है, उसी तरह रामराज्य में सब कौमी बीमारियों का इलाज है। देखो, रामराज्य की पुड़िया ऐसी है कि सब गर्जों पर चलती है। विदेशी ग़ुलामी इससे दूर हो जायगी। पूँजीपतियों और ज़मीन्दारों के अधिकारों पर आने वाली आँच इससे दूर हो जायगी। मज़दूरों और किसानों का शोषण इससे दूर हो जायगा। जनता की भूख और कंगाली इससे मिट जायगी। लोग सदाचारी बलवान और निर्भय हो जायँगे। देश से हिंसा मिट जायगी। सब परस्पर विरोधी सम्प्रदाय ज्यों के त्यों बने रहेंगे और उनमें कलह न होगा। स्त्रियों की पराधीनता दूर होजायगी और वे पतियों की आज्ञाकारी सेवक बनी रहेंगी। मैशीनरी से फैलने वाला अनाचार और व्यभिचार दूर होजायगा और बेरोज़गारी और बेकारी के कारण होने वाली देश की कंगाली भी दूर हो जायगी।..........प्रजातंत्र और समाजवाद के निरर्थक झगड़ों में पड़कर देश को व्यर्थ में श्रेणी संघर्ष के झगड़े में फँसाने से क्या फ़ायदा? यह स्वदेशी बूटी घोल-घाल पियो! हिन्दुस्तानियों को किसी से कुछ सीखने की ज़रूरत नहीं। हकीम साहब की बूटी तो हिमालय पहाड़ के चार सौ-बीस बरस बूढ़े महात्मा की दी हुई है, यह रामराज्य की बूटी स्वयम् भगवान की प्रेरणा है। जैसे महात्मा की बूटी के नुसख़े के बारे में किसी डाक्टरी या वैद्यक की पुस्तक के विचार से बहस नहीं हो सकती; उस पर जिरह वह करे जो, चारसौ-बीस बरस की आयु का हो। उसी प्रकार ईश्वर की प्रेरणा के विषय में सन्देह वही कर सकता है, जिसे खुदा से मुलाक़ात का दावा

हो ! कहो दोस्त, क्या बढ़िया नुसख़ा है ? तुम्हें और क्या लेना है पट्ठे ! अब चर्खा घुमाओ और नीरा पियो !"

एक गांधीटोपी धारी सज्जन इतिहासज्ञ के इस बकवास को सुन, अहिंसात्मक रूप से उत्तेजित हो रहे थे, आखिर बोले—"ज़ुबान तो तुम लोगों की बहुत चलती है, करेंगे कुछ नहीं ; सिवा इसके कि जिस पत्तल में खायें उसी में छेद करें !"

कामरेड साहब को शायद पेट की ज्वाला बहुत व्याकुल कर रही थी, बोल उठे—"कहाँ है पत्तल, कैसी पत्तल ?" गांधी टोपी धारी सज्जन ने उत्तर दिया—"यह पत्तल नहीं तो क्या ? कांग्रेस की बदौलत तुम लोगों को शक्ति मिली, देश में राजनैतिक जागृति फैली और अब आप उसी को कोस रहे हैं। तुम लोगों में हिम्मत हो तो देश के सामने अपना प्रोग्राम रक्खो। देश की जनता क्या तुम्हारी धोखाबाज़ी समझती नहीं ? तुम लोग देश में असंतोष और श्रेणी द्रोह की आग फैलाकर हिंसा का प्रचार करना चाहते हो !"

अब कामरेड समझे कि असली पत्तल का कोई ज़िक्र नहीं। बहस के पैंतरे से सम्भल कर उन्होंने उत्तर दिया—"हम हिंसा फैला रहे हैं कि देश में फैली हुई हिंसा को दूर करना चाहते हैं। करोड़ों किसान और मज़दूर एड़ी से चोटी तक पसीना बहाकर परिश्रम करते हैं या नहीं ? फिर भी उन्हें और उनके बच्चों को भर पेट भोजन नहीं मिलता, वे नंगे रहते हैं ; यह हिंसा है या नहीं ? लाखों आदमी बेरोजगार रह कर पेट पर पत्थर रखे मौत की घड़ियाँ गिनते हैं, यह हिंसा है या नहीं ? और यह सफ़ेदपोशी पर जान देने वाले मध्यम श्रेणी के लोग, अपने बच्चों की सेहत और शिक्षा के लिये बात-बात पर दिल मसोस कर रह जाते हैं, यह हिंसा है कि नहीं ? जनता के फ़ी हज़ार में नौ सौ-निन्यानबे का दुख संकट और ग़रीबी में रहना हिंसा है या नहीं ! इसी हिंसा को हम समाजवाद के द्वारा दूर करना चाहते हैं।"

"तुम्हारा समाजवाद तो निरी हिंसा है?"—गांधी टोपी धारी सज्जन ने जवाब दिया—"लोगों की धन सम्पत्ति छीन कर तुम आपस में बाँट लेना चाहते हो, यह हिंसा नहीं तो और है क्या?"

दार्शनिक के हाथ में एक सिगरेट था। बहस में पड़ सिगरेट को वे व्यर्थ जलने नहीं देना चाहते थे। सिगरेट जब इतिहासज्ञ ने उनके हाथ से ले लिया तो गांधी-टोपी धारी सज्जन को सम्बोधन कर वे बोले—"छीन लेने का तो कोई मौक़ा समाजवाद में रह ही नहीं जाता। समाजवाद में कोई किसी से छीनेगा कैसे, किसी का शोषण करेगा कैसे? देखिये शोषण तो वे ही लोग करते हैं जो स्वयम मेहनत से पैदा नहीं करते। समाजवाद का तो अर्थ है, सम्पूर्ण समाज समान रूप से मेहनत कर सके। जब सभी लोग मालिक होंगे तो कोई छीनेगा किससे?

गांधी-टोपीधारी एक दूसरे सज्जन, जो ऐनक लगाये थे और गम्भीर जान पड़ते थे, टोककर बोले—"यह सब तो कहने की बात है। समाजवाद में आप लोग मज़दूरों का राज बल्कि कहिये मज़दूरों की तानाशाही कायम करना चाहते हैं फिर उसमें सबका समान अधिकार कैसे हो सकता है?""यह तो हिंसा की भावना है। रामराज्य में सभी के लिये, चाहे मालिक हों या मज़दूर, समान अधिकार होगा, असली समता होगी।

"हाँ हम चाहते हैं!"—कामरेड धौंस के स्वर में बोले। चुप कराने के लिये उनका हाथ थामते हुए दार्शनिक ने कहा—"श्रीमानजी, मज़दूरों की तानाशाही आपने कह तो दिया परन्तु इसका मतलब क्या समझे!"

"मतलब?"—गाँधीवादी सज्जन ने हाथ उठाकर कहा—"मतलब क्या; तानाशाही किसी की भी हो, अन्याय और अत्याचार है। हम मानते हैं कि मज़दूरों का शोषण अन्याय है परन्तु मज़दूर दूसरों पर अत्याचार करें यह भी तो न्याय नहीं? आप ही बताइये क्या यह न्याय है? और फिर उसमें साम्यवाद क्या हुआ? यह तो मज़दूरों की शक्ति

के बल पर हिंसा हुई। इसका मतलब है कि जब शक्ति दूसरे के हाथ मे जायगी, उसे भी हिंसा करने का अधिकार होगा! न्याय, साम्यवाद और अहिंसा हृदय परिवर्तन हुए बिना क़ायम नहीं हो सकती! न्याय और समता हो सकती है केवल अहिंसा और सेवा भाव से! जब शासन केवल सेवा भाव से किया जाय?"

सिगरेट का कश आधे में छोड़ इतिहासज्ञ खाँस उठे—"इनका मतलब है, चोरी यदि प्रेम भाव से की जाय तो चोरी नहीं और शासन सेवा भाव से किया जाय तो हिंसा नहीं।"

"शासन सेवा भाव से कभी किया ही नहीं जा सकता"—दोनों हाथ अपनी पतली कमर पर रख वे जोश में एक कदम आगे बढ़ गये—"और न कभी किया गया है।"

"वाह साहब!" बोले—"ऐसे-ऐसे राजा भारत में हुए हैं, जिन्होंने प्रजा की सेवा ही अपने जीवन का उद्देश्य समझा। पाँचों उँगली एक सी थोड़े हो सकती हैं!"

"अजी साहब सुनिये तो"—कमर से एक हाथ उठा सुनने का संकेत करते हुए दार्शनिक बोले—"कोई राजा कैसा भी हो, काम तो उसका शासन करना ही है! और शासन किया किस लिये जाता है?"

"शासन क़ायम किया जाता है समाज में शान्ति और व्यवस्था क़ायम रखने के लिये! इसलिये कि कोई किसी पर अत्याचार न करे! सब लोगों को आराम से जीवन गुज़ारने का बराबर अधिकार हो! राम राज्य में शासन का उद्देश्य इसी प्रकार की अहिंसा है।"—गाँधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया।

दार्शनिक अपनी बात जल्दी कह पाने की बेसबरी में एक क़दम और आगे बढ़ गये—"अरे भाई आपके राम अयोध्या में हो गये परन्तु शासन तो समाज के आरम्भ से दुनिया भर में क़ायम किया जाता रहा है।? शासन राम से पहले भी था और बाद में भी रहा। किसी के राम

या रावण बन जाने से शासन के उद्देश्य में अन्तर नहीं आ जाता। बहुत हुआ कुछ समय के लिये शासन के व्यवहार में अन्तर आजायगा···· ठीक कहा हमने········?" इतिहासज्ञ कुछ और कहना चाहते थे परन्तु गाँधीवादी सज्जन बोल उठे—"दुष्ट और स्वार्थी शासकों की बात जाने दीजिये। शासन और व्यवस्था का उद्देश्य होना चाहिये न्याय, धर्म और अहिंसा!"

"बहुत ठीक"—हाथ जोड़ इतिहासज्ञ ने स्वीकार किया—"न्याय, धर्म और अहिंसा की स्थापना अवश्य होनी चाहिये। यह हम मानते हैं परन्तु न्याय, धर्म और अहिंसा के क़ायम रहने में कोई खतरा होगा तभी तो आप उसका प्रबन्ध करने के लिये व्यवस्था करेंगे या ऐसे ही?"

"हाँ और क्या?"—कामरेड ने अपने साथी को बात जारी रखने का अवसर देने के लिये हामी भरी।—दार्शनिक ने अपनी बात आरम्भ की—"तो फिर समाज में शासन या प्रबन्ध क़ायम कौन कर सकता है? जो लोग निर्बल कमज़ोर और साधनहीन हैं या वे लोग जो बलवान और साधन सम्पन्न हैं? आप कहते हैं शासन और व्यवस्था इसलिये क़ायम होनी चाहिये कि अन्याय और हिंसा न हो। हम पूछते हैं जो कमज़ोर है, साधनहीन है, वह कमबख्त हिंसा और अन्याय करेगा किस पर और किस बूते? अन्याय और हिंसा वही कर सकता है जो बलवान और साधन सम्पन्न होगा। मुआफ़ कीजिये गुस्ताखी,समाज में शासन उसी का होगा जो सबल और साधन सम्पन्न है—मानते हैं या नहीं आप?"

गांधीवादी सज्जन को बोलने के लिये मुख खोलते देख, दोनों हाथ उठा इतिहासज्ञ बोल उठे—"इसका मतलब हुआ कि शासन सदा हिंसा और अन्याय क़ायम रखने के लिये होता है। न्याय और अहिंसा क़ायम हो सकती है केवल शासन का अन्त कर देने से········मानते हैं कि नहीं आप?"

"बिलकुल ठीक बिलकुल ठीक!"—कहकर कामरेड ने ज़ोरों से

समर्थन किया। परन्तु इस समर्थन से गांधीवादी दबे नहीं। वे बोले—"यह भी कोई दलील है? सीधी बात तो यह है कि शासन और व्यवस्था क़ायम की जाती है कि कोई किसी का हक़ न छीने, किसी पर अनुचित दबाव न डाले, किसी की हिंसा न करे। शासन होता है धर्म की रक्षा के लिये।"

दार्शनिक से पहले ही बोल उठे इतिहासज्ञ—"यह तो ठीक है कि शासन धर्म न्याय, और अहिंसा की रक्षा के लिये होता है परन्तु धर्म, न्याय और अहिंसा क्या है, इस बात का निश्चय भी तो बलवान, साधन सम्पन्न और मालिक ही कर सकते हैं। ऐसे लोगों को भय रहता है, इनके धन दौलत पर लोग हाथ चलायेंगे इसलिये वे नियम बनाते हैं कि किसी का धन कोई भी न ले! परन्तु सेवक या प्रजा से परिश्रम करा उन्हें पेट भर रोटी दे शेष धन अपने पास रख लेना कभी हिंसा या पाप नहीं समझा गया। मालिक की स्थिति और अधिकार जिस तरह से क़ायम रह सके वही सब न्याय और अहिंसा है। प्रजा में द्रोह की भावना ज़ोर न पकड़े, इसलिये ऐसे नियम सब पर समान रूप से लागू किये जाते हैं। परन्तु सम्पूर्ण व्यवस्था का प्रयोजन होता है मालिकों के अधिकार और हित की रक्षा! धर्म और व्यवस्था की रक्षा का अधिकार सदा रहा है मालिकों और ठाकुरों के हाथ, कभी गुलामों ने या सेवकों ने यह काम नहीं किया। राम राज्य में न्याय और अहिंसा क़ायम रखने के लिये तपस्या कर ऋषियों की बराबरी करने वाले शूद्रक का सिर काटना ही पड़ा। इसके लिये राम को क्या दोष दिया जाय?"

"इस एक घटना को लेकर आप इतना रंग बाँधते हैं"—गाँधीवादी सज्जन ने उत्तर दिया।—"परन्तु यह आप नहीं देखते कि वह राज, प्रजा का शोषण करने के लिये नहीं बल्कि प्रजा की सुख शान्ति के लिये प्रजा की सम्पत्ति से होता था। देखिये एक धोबी के कहने से राम ने सीता को बनवास दे दिया। भारत में शक्ति और धन का राज्य

कभी नहीं हुआ ! यहाँ शस्त्रधारी क्षत्रियों और राजाओं से अधिक सम्मान और शक्ति थी, सर्वस्व त्यागी ब्राह्मणों और ऋषियों की, जो वल्कल-वस्त्र पहन और कन्द मूल खाकर निर्वाह करते थे ! उनके पैर के अँगूठे से राजाओं का राजतिलक होता था !"

"यदि राम ने यह सोचा कि प्रजा में धोबी जैसे तुच्छ मनुष्य भी मुझे स्त्री का दास समझ जाते हैं तो प्रजा में मेरा क्या सम्मान रहेगा और प्रजा पर अपना प्रभाव रखने के लिये उन्होंने अपनी स्त्री को घर से निकाल दिया तो इसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि राम का राज्य शक्ति के बल पर प्रजा को वश में रखने की व्यवस्था नहीं थी।"—इतिहासज्ञ बोले—"कन्द-मूल खाकर और पेड़ों की छाल ओढ़कर राज्य की व्यवस्था के नियम बनाने वाले ऋषि लोग आखिर थे कौन ? वे शासक श्रेणी के नेता थे और शासक श्रेणी के हित के लिये ही व्यवस्था क़ायम रखते थे। दूसरी जातियों को राक्षस बता, अपनी जाति और श्रेणी के योद्धाओं को उपदेश देते थे कि उनका नाश करें और दूसरी श्रेणियों को तुच्छ बता उच्च जाति और वर्ण की सेवा के लिये उन्हें वश और व्यवस्था में रखने का उपदेश देते थे। उनका त्याग एक विशेष विचार धारा के कारण व्यक्तिगत जीवन का शौक और ढङ्ग था। ऐसे त्याग से समाज में शोषण और दमन समाप्त नहीं हो सकता। यूनान के महर्षि सुक़ात बड़े भारी त्यागी थे परन्तु तो भी उपदेश दे गये कि सभ्यता के विकास के लिये ग़ुलामी की प्रथा आवश्यक है, न्याय है और धर्मानुकूल है। यही बात भारत में थी ! राज्य ब्राह्मणों का था, क्षत्री उनके कारिन्दे थे। वे कहलाते थे राजा परन्तु राज्य करते थे ब्राह्मणों के आशीर्वाद और अनुमति से और इसके फलस्वरूप ब्राह्मणों की सब आवश्यकतायें पूरी करते थे। उस व्यवस्था में खेती और व्यापार करने वाले वैश्यों को तथा बिना साधन के शारीरिक परिश्रम करनेवाले शूद्रों सेवकों का शोषण होता था। वर्ण व्यवस्था की शासन पद्धति का उद्देश्य

यही था। परिस्थितियाँ बदलने के कारण शासन व्यवस्था में ब्राह्मणों का वह अधिकार नहीं रहा। जीवन-निर्वाह के साधनों पर अधिकार होने से वैश्य का काम करने वालों का शासन समाज की आर्थिक व्यवस्था पर होगया और वे ही लोग इस समय संसार भर में शासक श्रेणी हैं। आज रामराज्य की व्यवस्था में सुख-शांति, सेवा और अहिंसा का राग अलापने का मतलब मालिक और सेवक की व्यवस्था बनाये रखना है। मालिकों के हाथ से अधिकार न छीनने के लिये परिश्रम करने वाले शूद्रों को अहिंसा का उपदेश दिया जाता है और मालिकों को उपदेश दिया जाता है त्याग और सेवा भाव का, ताकि परिश्रम करने वाले शूद्र व्यवस्था को पलट डालने के लिये विवश ही न हो जाँय। मतलब यह है कि शोषण की असह्य व्यवस्था को सह्य बनाकर क़ायम रखा जाय और उसे नाम दिया जाय रामराज्य की पुड़िया का, जिसे खोलकर कोई देख नहीं सकता! क्योंकि वह अदृश्य भगवान की प्रेरणा है। यह धोका नहीं तो क्या है?"

ज़ोर से और बोलने के कारण इतिहासज्ञ का चेहरा लाल होगया और मुख सूखने लगा। यह देख दार्शनिक ने कहना शुरू किया—"जब एक श्रेणी साधनों की मालिक और बलवान होगी और दूसरी साधनहीन और निर्बल तो बलवान श्रेणी का शासन होगा ही। उसे नाम आप चाहे जो कुछ दे दीजिये। चाहे प्रजातंत्र कहिये या रामराज्य कहिये या मेहनत करने वाले साधनहीनों के जाग्रत हो जाने पर उन्हें बलपूर्वक वश में रख फैसिज्म या नाज़िज्म कहिये, वह सब है एक ही!"

कामरेड अपने साथियों की इतनी लम्बी वक्तृता से जोश में आ गये। और किसी को बोलने का अवसर न दे, दोनों बाहें ऊँची उठा, ऊँचे स्वर से उन्होंने कहा—"मज़दूरों का एकछत्र राज!" स्वयम ही अपनी विजय समझ कर उन्होंने नारा भी लगा दिया—"पूँजीवाद का नाश हो! इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!"

कामरेड के यह सब जोश और उत्साह दिखा देने के बाद गाँधी-वादी सज्जन ने मुस्कराकर कहा—"बहुत खूब ! दूसरी श्रेणियों की ताना-शाही की निन्दा और नाश का नारा लगा देने के बाद आप मज़दूरों की तानाशाही को जिन्दाबाद कर रहे हैं। आप दमन और हिंसा के पुजारी हैं। चाहते हैं केवल यह कि हिंसा का अधिकार पूँजीपतियों और ज़मीन्दारों के हाथ से निकलकर मज़दूरों के हाथ में आजाय !"

दार्शनिक साहब बौखला गये, बोले—"यानी आपने कसम खाली है कि समझेंगे ही नहीं। श्रीमानजी मज़दूर या मेहनतकश कहते उसे हैं, जिसके पास शोषण, हिंसा या दमन के साधन ही न हों ! मेहनतकश का गला घोंटकर आप उसके प्राण लेना चाहें ऐसी हालत में वह छट-पटाने लगे और उसके पैर या हाथ आपकी नाक पर जा लगें तो इसे हिंसा नहीं कहा जायगा ! समझते हैं आप ! आपके नीति शास्त्र के ही अनुसार हिंसा का अर्थ है बलपूर्वक दूसरे को हानि पहुँचाना ! साधन-हीन आदमी या श्रेणी ऐसा करेगी किस तरह ? और फिर मज़दूर राज का यह अर्थ तो है नहीं कि मज़दूर पूँजीपति या साधनों के मालिक बन जायँ और जो लोग आज पूँजीपति या ज़मींदार हैं उन्हें साधनहीन बना दें ! साधनों के उपयोग का अवसर मज़दूर राज में सब को एक ही समान होगा ? उस अवस्था में सबके हित भी एक ही नीति से पूरे होंगे फिर दमन या शासन किस का किया जायगा ?

टोक कर गाँधी टोपी धारी सज्जन ने प्रश्न किया—"तो फिर जनता के सेवकों का राज क्यों न हो ? मज़दूरों का राज क्यों हो ?"

"शासन का काम अपने सेवकों से न करा जनता स्वयम् ही क्यों न करे ? हमें अपनी सेवा कराना मंजूर नहीं। जब समाज में सभी लोग मेहनत करने वाले हैं, उस समय यदि सब काम मेहनत करने वालों के हित से उनकी राय से किया जाता है तो इसका मतलब सम्पूर्ण जनता की इच्छा का पूर्ण राज। इसे आप तानाशाही या हिंसा किस तरह कह

सकते हैं ? अर्थ का अनर्थ आप करना चाहें तो दूसरी बात है ? मज़दूरों की तानाशाही का अर्थ यदि यह है कि मेहनत करनेवाली जनता की इच्छा और निर्णय के पूरा होने में कोई रुकावट न होगी तो इसे आप हिंसा कहेंगे या अहिंसा ? ऐसी अवस्था में भी यदि कोई आदमी मेहनत करने वाली सम्पूर्ण जनता की राय और इच्छा के विरुद्ध अपनी ही हाँकना चाहता है तो हिंसा का अपराधी वही है और सम्पूर्ण जनता को हिंसा से बचाने के लिये उस हिंसा को रोकना ज़रूरी होगा या नहीं ? इसे आप जनता की तानाशाही कहेंगे या जनता का आत्म-निर्णय कहेंगे ? इसे आप जनता के कल्याण के लिये व्यक्तिगत तानाशाही को रोकना कहेंगे या व्यक्ति पर अत्याचार कहेंगे ?"

दार्शनिक इतने उत्साह और आवेश से बोल रहे थे कि कई बेर थुथला गये परन्तु गाँधीवादी सज्जन ने अविचल भाव से उत्तर दिया—"देखिये यह क्या विचारों का दमन नहीं ? यदि आप बहुमत के बल से अल्पमत को अपने विचार तक प्रकट न करने दें। इसे विचार स्वतंत्रता नहीं कहा जा सकता और विचारों का दमन सबसे बड़ा अत्याचार है। आपके रूस में यही तो हो रहा है। यह मनुष्य को पशु बना देता है ?"

इतिहासज्ञ सिगरेट समाप्त हो जाने पर कामरेड की जेब से एक बीड़ी निकाल उसे सुलगाते हुए बोले—"विचारों की स्वतंत्रता का आपको बहुत ख़याल है ? परन्तु विचार तो मनुष्य कर सकता है तब, जब उसे जीवित रहने का अवसर हो। भली प्रकार जीवित रहने के लिये ही मनुष्य विचार भी करता है। जब मनुष्य के पास जीवित रहने के ही साधन नहीं, जीवित रह सकने के लिये उसे पराधीन रहना पड़ता है तो विचारों की स्वतंत्रता आयेगी कहाँ से ? पहले उसे स्वतंत्रता पूर्वक विचार करने का अवसर तो दीजिये फिर उसके विचारों की स्वतंत्रता की बात सोची जायगी। मेहनत करने वाली जनता को पहले जीवित रहने का अवसर दीजिये तब देखिये वह क्या विचार करती है। जिन

लोगों को दूसरों की दया पर जीवित रहना पड़ता है, उनके विचारों की स्वतंत्रता कैसी?"

दार्शनिक बोले—"अल्पमत के विचारों का आपको बहुत दर्द है परन्तु यह तो सोचिये कि हज़ार में से नौ-सौ निन्यानवे आदमियों के विचारों के विरुद्ध यदि आप अपने विचारों को अमल में लाने की स्वतंत्रता चाहें तो यह नौ-सौ निन्यानवे के विचारों का दमन होगा या नहीं? और फिर यदि कोई एक आदमी बहुमत के हित की ही बात कहता है तो आप शेष सब लोगों को इतना मूर्ख और दुराग्रही क्यों समझ लें कि वे उसकी बात नहीं मानेंगे? भगवान यदि संसार का कल्याण चाहते हैं तो वे केवल एक आदमी के हृदय में सत्य की प्रेरणा करके शेष सबको घपले में रखेंगे, यह विश्वास करने को हमारा तो जी नहीं चाहता!"

बहस में अक़सर वही जीतता है जो ऊँचा बोल पाता है। इतिहासज्ञ के तो मानो गले में ही लाउड स्पीकर लगा हो! दार्शनिक की रामराज्य की पुड़िया की तारीफ़ के आगे दवाई बेचने वाले मजमाबाज़ के कदम पहिले ही उखड़ चुके थे। दवाई बेचनेवाले तो इतिहासज्ञ और दार्शनिक से हार मान चले गये क्योंकि उन्हें समय का सदुपयोग करना ज़रूरी था परन्तु गांधीवादी सज्जन को ऐसी कोई मजबूरी शायद न थी। इसलिये वे बहस के मैदान में डटे रहे। उन्होंने बिल्कुल 'धोबीघाट' के से ढंग का दाँव कर दार्शनिक से पूछा—"आप जो फ़र्माते थे कि शासन सदा ही सबल श्रेणी निर्बल श्रेणी को वश में रखने के लिये स्थापित करती है, उसमें सदा ही हिंसा रहती है, तो मज़दूर-राज, मज़दूर-शासन भी मज़दूरों के बल पर क़ायम होगा और शासन-शक्ति हाथ में रखनेवाले लोग उन लोगों का दमन करेंगे, जिनके हाथ शक्ति नहीं होगी?"

इन्हें उत्तर मिला—"राज और शासन शब्द से आपको इतना मोह है कि आप उसके लिये कोई न कोई शिकार ढूँढ़ ही लेना चाहते हैं, चाहे वह निरा ख़याली ही क्यों न हो? आप ही बताइये, जब जीवन-

निर्वाह के साधनों को उपयोग में लाने की शक्ति सभी लोगों में एक जैसी होगी तो कोई किसी से अधिक बलवान किस दृष्टि से होगा ? और किसी पर किसी का शासन कैसे हो सकेगा ? हम कहते हैं, हिंसा और शोषण की सम्भावना ही न रहने दो ! शिकार ही न होगा तो शिकारी मारेगा किसे ! जब ऐसे लोग ही न होंगे जो निर्बल हों, जिनका शोषण होसके तो फिर शासन और शोषण होगा किसका ?" देखिये आध्यात्मिक बात आपकी समझ में आसानी से आजायगी। लोगों को संयम करने का उपदेश आप देते हैं न ? संयम से किसका दमन किया जाता है ? मनुष्य के मन या इन्द्रियों में जो हानिकारक भाव या विचार उठते हैं, अपनी इच्छा से अपने कल्याण के लिये उन्हें रोकने को संयम कहते हैं। ऐसे ही मेहनत करने वालों का सामाजिक संयम होगा, राज या शासन नहीं होगा·······तानाशाही की तो बात ही जाने दीजिये !"

गाँधी टोपी धारी सज्जन ने शंका की—"वाह साहब, पाप और अनाचार क्या पेट के लिये ही होता है ? बल्कि खाते-पीते लोग और अधिक पाप करते हैं।"

इतिहासज्ञ ने विस्मय प्रकट कर कहा—"यानी आप का मतलब है कि मनुष्य स्वभाव से ही·······यानि भगवान ने उसे बनाया ही पापी है ! तो फिर भगवान उसे भले काम की प्रेरणा देगा क्यों ? हम कहते हैं, पाप होता है मजबूरी के कारण ! खाते-पीते लोग गरीबों को दुख पाता देख इस दुख से बचने के लिये अपनी शक्ति बढ़ाने की कोशिश करते हैं इसी से अधिक बलवान बनने की, हुकूमत करने की इच्छा पैदा होती है।"

भावुकता में आ गम्भीर हो दार्शनिक कहने लगे—"मनुष्य की सभ्यता का उसके मनुष्यत्व का यह पूर्ण विकास है कि मनुष्य समाज पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो, अपने विवेक के अनुसार चले ! जिस समाज

में शासन जितना कठोर हो, वह समाज उतना असभ्य होता है। शासन के बन्धन की ज़रूरत न रहना ही उसके पूर्ण सभ्य होने का प्रमाण है। ऐसी स्वतंत्रता केवल श्रेणी रहित समाज में मेहनतकशों की व्यवस्था में ही हो सकती है।"

इतिहासज्ञ ने देखा कि दार्शनिक के भावपूर्ण कथन को लोग बेमन से सुन रहे हैं। इसलिये उनकी बात उन्होंने खुद कहनी शुरू की—"देखिये साहब! आपके पास है रामराज्य की पुड़िया जो बीसियों रोगों का इलाज है। आप चाहते हैं रामराज्य हो और उसमें मालिक-सेवक का वैमनस्य दूर हो, साम्प्रदायिक झगड़े दूर हों, दरिद्रनारायण की पूजा हो, लोग हिंसा के मुक़ाबिले अहिंसा का मोर्चा लगावें, तब रामराज्य की सार्थकता सिद्ध हो! कहा है न किसी ने—दर्द भी होता रहे, होती रहे फर्याद भी; मर्ज़ भी क़ायम रहे, जिन्दा रहे बीमार भी! और अपना यह है कि यह सब संकट हटाओ! राज की ही ज़रूरत न रहे! न रामराज्य की, न रावण राज्य की·······!"

इतिहासज्ञ अपनी बात समाप्त भी न कर पाये थे कि समीप ही काँग्रेस के जलसे की भीड़ के बीच, मंच पर खड़े हुए एक तेजस्वी नेता ने इस ओर से आते हुए इस शोर को सुनकर धमकाया—"यह क्या गुल हो रहा है? आप लोगों में ज़रा भी डिसीप्लिन नहीं! यह क्या···· यह क्या नामाक़ूलियत है?·······हमारे सामने बड़े-बड़े सवाल पेश हैं और आप लोग आँख मूँदकर छोटी-छोटी बातों में फँसे हुए हैं।········ सब लोग चुप हो जाइये! वर्ना हम खुद आकर एक-एक शोर मचाने वाले को उठाकर जलसे के बाहर फेंक देंगे!"

इन तेजस्वी नेता के, अहिंसा के बल से शिकार की ताक में खड़े चीते की भाँति काँपते हुए हाथ पैर देख, कामरेडों की बोलती बन्द हो गई।

७

## मनुष्यत्व की हुंकार !

भगवान कभी-कभी अपना आशीर्वाद ऐसे बेमौके बरसा देते हैं कि उससे कल्याण के बजाय संकट ही अधिक होता है। मनुष्य का कौन पाप इस आशीर्वाद रूपी दण्ड का कारण होता है, सो भी वह जान नहीं पाता। ऐसी अनियंत्रित कठोरता करके भी भगवान कृपालु हैं। यदि मनुष्य ऐसा निरंकुश व्यवहार करे, वह कभी मनुष्य से क्षमा की आशा नहीं कर सकता।

बैसाख के अन्त में जब मनुष्य के पसीने और पृथ्वी के गर्भ की उर्वरा शक्ति के संयोग से खलिहानों में सुनहरी फसल के ढेर लगे थे, जब अभी जरूरत थी पच्छिमी हवा की थपकियों की, जो मनुष्य की क्षुधा निवारण करने वाले कंचन के कणों को भूसे के आवरण से अलग करे, खेती में सहयोग देने वाले मनुष्य और पशु अपना-अपना भाग अन्न कणों और भूसे के रूप में पा सकें—भगवान को ख़याल आ गया ख़स की टट्टियों के पीछे दुबक, ख़स का इत्र मल, खसखस की ठण्डाई के लिये व्याकुल होने वालों का !''''''''बरस पड़े ओलों और गहरी बौछारों में !

दार्शनिक बेचारे की शाम की महफ़िल गई। भीगी बेंचों और पानी भरी घास पर बैठ बहस करने कौन आता ? इस लिये जब गरमी के कारण अजीर्ण से दुख पाने वाले सज्जन भगवान के बेमौक़ा आशीर्वाद के प्रति धन्यवाद देने के लिये, ताक़ी के चुक्कड़ और सोडे ब्राइज़िम के

पेग और गजक की चिन्ता कर रहे थे ; किसान फसल पर गिरी गाज से स्तब्ध हो लगान के लिये घरवाली के खडुए रेहन रखने की चिन्ता कर रहे होंगे, दार्शनिक अपने सींख से रूखे बालो को शीतल हो गई हवा मे फहराते हुए निकल पड़े, बंजर के मैदान की विस्तीर्ण शीतलता मे लम्बे और मुक्त श्वास लेने के लिये ।

प्यासी धरती की दराजों में जल जाने से उसने उगल दिये करोड़ों ही जीव जन्तु । एक पुरानी बामी की जड़ से अरबो दीमक, अपने शरबती शरीरो में, धाराओ की भाँति उमड़ रहे थे । कुछ ही कदम पर उसी असंख्य संख्या में काले रंग की चींटियो के दल दूसरी बामी से निकल उन पर घोर आक्रमण करने लगे । एक कल्पनातीत, भयंकर संग्राम मे असंख्य सफ़ेद और काली चींटियों का संहार होने लगा । सफ़ेद और काली रणमस्त चीटियों के दल शत्रु पक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर भीगी पृथ्वी को ढंकने लगे ।

दार्शनिक सोचने लगा—यह सब क्यो ? उसी समय मन के संस्कार बोल उठे, शायद सफ़ेद चीटियो को उपनिवेशो की आवश्यकता है या उन्हें काली चींटियों के भिटे में जमा खाद्य पदार्थों की जरूरत है। काली चीटियाँ प्राण रहते अपनी भूमि और खाद्य भण्डार की ओर किसी की दृष्टि सहन नहीं कर सकतीं ।....कितनी धरती और कितना खाद्य पदार्थ इन दोनों ही प्रकार की चींटियो के लिये सृष्टि में भरा पड़ा है । यदि यह चीटियाँ अपनी शक्ति दूसरी चीटियो के शरीर के टुकड़े करने में व्यय न कर, नई बामी बनाने और खाद्य पदार्थ के नये भण्डार सञ्चय करने में व्यय करें तो यह दोनो ही दल कितने सुखी हो सकते हैं ?

चींटियों की इस मूर्खता से उद्विग्न हो, उनकी भलाई के लिये दार्शनिक के मुख से परस्पर प्रेम, सेवाभाव और हृदय परिवर्तन के उपदेश एक व्याख्यान आरम्भ होने को ही था कि समीप ही एक बड़े

अहाते के फाटक को सँभाले, ईंटों के खंभे पर चिपके, हवा में फरफराते, बड़े इश्तहार में जनता से अपील थी—अपने जानोमाल की रक्षा के लिये, अपने देश की रक्षा के लिये जंग में इमदाद देने की।

मानो दार्शनिक की आँखों के सामने का दृश्य जादू की छड़ी के स्पर्श से बदल गया! रणांगन में जूझती उन करोड़ों चींटियों के स्थान में उसे दिखाई देने लगे उतने ही नर शरीर। शीतल वायु के स्पर्श से उत्साह पा दार्शनिक की कल्पना और भी प्रखर और गहरी हो उठी। युद्ध में जूझते असंख्य मनुष्यों के साथ ही उसे दिखाई देने लगे—टैंक, तोपों की गाड़ियाँ जो सौ मील पर गोला फेंककर प्रलय काण्ड करती हैं; मृत्यु की वर्षा करने वाले, हवाई जहाज़ जिन्हें कोई प्राकृतिक आड़ रोक नहीं सकती। इस मृत्यु को रोक सकता है, मनुष्य का ही प्रयत्न और मृत्यु की इस शक्ति की सृष्टि भी मनुष्य ही करता है! दार्शनिक के दिमाग में घूमने लगी—मनुष्य के प्रयत्न की असीम शक्ति की बात! अपने आपको तुच्छ समझने वाले मनुष्य के प्रयत्न की शक्ति कितनी असीम है?

उसे याद आने लगी हाल में किसी अखबार में पढ़ी एक खबर"" ब्रिटेन का हवाई बेड़ा कई करोड़ मील का चक्कर युद्ध आरम्भ होने के समय से अब तक लगा चुका है। लगभग उतने ही करोड़ मील का चक्कर जर्मन के हवाई बेड़े ने भी जरूर लगाया होगा। और रूस का हवाई बेड़ा; अमेरिका का हवाई बेड़ा; जापान का हवाई बेड़ा; और कितने ही देशों के हवाई बेड़े? इन सब बेड़ों की शक्ति?""""कितने ही सैकड़ों-अरब मील का चक्कर इन हवाई बेड़ों ने मिलकर लगाया होगा? संसार भर की मनुष्य-संख्या है कितनी? यही करीब-करीब एक अरब से कुछ ज़्यादा!

दार्शनिक को विस्मय होने लगा—यदि मनुष्य द्वारा बनाये गये इन हवाई जहाज़ों की शक्ति केवल मनुष्य को मारने के प्रयत्न में और

मनुष्य द्वारा की जाने वाली चोट से बचाव करने में खर्च न होती तो संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिये सम्भव था कि सैकड़ों मील हवाई जहाज़ की सैर कर सकता ! और दार्शनिक का हाल यह है कि जब पेट भरने की चिन्ता उसे जेठ की दुपहरी में, तपती सड़क पर दो मील दौड़ाती है तब लंगड़ाते इक्के या साइकिल तक की सवारी उसे मुयस्सर नहीं होती ! वह क्या मनुष्य नहीं ? क्या मनुष्य की इस विशाल शक्ति में उसका कोई भाग या अधिकार नहीं ?.........मनुष्य की यह विशाल शक्ति अब तक थी कहाँ ? अप्रत्यक्ष के किस गर्भ में यह छिपी पड़ी थी ? ठीक वैसे ही जैसे यह सैकड़ों-करोड़ काली और सफेद चींटियाँ वर्षा से पूर्व छिपी रहकर भी मौजूद थीं, उसी प्रकार मनुष्य की यह शक्ति भी.........।

मनुष्य की शक्ति, और उसका सामर्थ्य क्या केवल हवाई जहाज़ों की गिनती और उड़ान तक ही सीमित है ? मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य को जाना जा सकता है उसके कामों से, रुपये के मूल्य में। एक तोप, टैंक या हवाई जहाज़ की कीमत क्या होगी ? कई लाख रुपये ! कितने परिश्रम से लाख तोपें, टैंक और हवाई जहाज़ इस युद्ध में बनाये या बिगाड़े जा चुके हैं; उनका हिसाब मुश्किल है। पर कितने अरब रुपया या कहिए कितने मूल्य की मनुष्य की मेहनत-हमारी बहादुर सरकार इस युद्ध में रोज़ाना खर्च कर रही है, उसका हिसाब अखबार और रेडियो प्रचार से जानने को खूब मिलता है। फिर वही बात कि उतने ही अरब रुपये की मेहनत प्रतिदिन जर्मनी, अमेरिका, रूस, जापान सभी खर्च कर रहे होंगे। सब मिलाकर प्रतिदिन सैकड़ों अरब रुपयों का खर्च ! लेखा लगाने से संसार के प्रति मनुष्य के हिसाब से लाखों ही रुपये खर्च हो चुके और हो रहे हैं। यदि इतने मूल्य के परीश्रम से दार्शनिक या उस जैसों की अवस्था सुधारने की बात सोची जा सकती !

यह दूसरी बात है कि दार्शनिक साहब खुश्क रोटी और पानी में उबली दाल खाकर भी ढाबेका बिल प्रति मास सहूलियत से चुका पाते।

जूते की सीवन उधड़ जाने पर मरम्मत के लिये और गली के कोने पर पनवाड़ी के यहाँ से ली गई बीड़ी का उधार चुकता करने में उनके सामने बजट की कठिनाइयाँ आ जाती हैं। यह दूसरी बात है कि हज़ारों लाखों मनुष्य दार्शनिक के चारों ओर ऐसे हैं जो पेट भर अन्न और लाजा ढाँकने के लिये कपड़े का माकूल चिथड़ा भी नहीं पा सकते। बड़े साहब के कुत्ते के भाग्य से ईर्षा करने वाला दार्शनिक उनके सामने सम्पन्न और सम्मानित बाबू के रूप में अकड़ कर चल सकता है परन्तु संसार के जमा-खर्च की बही में उन सबके नाम से भी हज़ारों ही रुपया उनके हितों और अधिकारों की रक्षा के लिये प्रजातंत्र के नाम नित्य खर्च हो रहा है?

संसार की दृष्टि में चाहे दार्शनिक के व्यक्तित्व का मूल्य कुछ भी न हो! शायद वह उतना ही नगण्य हो जितनी कि हज़ारों और लाखों की संख्या में मरने वाली सफ़ेद और काली चीटियाँ। जो भी हो, दार्शनिक के दिमाग़ में एक अभिमान और ख़याल समाया हुआ है; वह है—मनुष्य होने का दावा!

इस दावे के दुस्साहस से वह समझता है कि संसार और समाज के प्रति उसकी कुछ जिम्मेदारी है और संसार और समाज पर उसका भी कुछ दावा है। कमसे कम उतना, जितना कि संसार की मनुष्य गणना में उसका अंश है। संसार की मनुष्य गणना का इतना तुच्छ अंश होने के नाते शायद उसका कुछ भी मूल्य न हो। इसीलिये अपने ही जैसे दूसरे मनुष्यों को अपने साथ मिलाकर वह एक सबल रस्सी बन जाना चाहता है। संसार की व्यवस्था के निरंकुश होते हुए हाथी को इस रस्सी से बाँधकर वह "मनुष्य" के जीवन को जीने योग्य बनाने की कल्पना करता है। इस रस्सी को वह समाजवाद का नाम देता है। दार्शनिक की कल्पना है—समाज की व्यवस्था का हाथी पुरानी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था की साँकलों के बोसीदा होकर कुछ-

मुड़ा जाने से विशृंखल हो गया है। इसलिये वह युद्ध के रूप में उन्मत हो, मनुष्य समाज के सब करे-धरे को अपने विनाश के पैर के नीचे कुचले डाल रहा है!

मनुष्य के प्रयत्न, उसकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुपात को इस युद्ध में होने वाले विनाश के रूप में पहचान, मनुष्य होने के दावे से दार्शनिक का माथा गर्व से इतना ऊँचा हो जाता है कि उसका शेष शरीर पृथ्वी पर न जाने कहाँ अकिंचन रूप में पड़ा रह जाता है। परन्तु पृथ्वी से परे कहीं उड़ जाकर तो जीवन चल नहीं सकता! इसलिये जीवन की वास्तविकता उसे फिर पृथ्वी पर खींच लाती है। इस पृथ्वी पर लौट जब उसकी विचार-शक्ति देखती है—मनुष्य का प्रयत्न और शक्ति उसके अपने विनाश में ही लगी है तो मनुष्य होने के दावे के नाते वह लज्जा से पृथ्वी में गड़ जाता है।

मनुष्य अपनी शक्ति और सामर्थ्य का उपयोग ठीक से नहीं कर पाता और अपना नाश करने लगा है। मनुष्य की यह शक्ति और सामर्थ्य उस पर चोट न कर उसके उपयोग में आये; मनुष्य के लिये मृत्यु के साधन तैयार न कर, जीवन की सहूलियतें पेश करे, इस उद्देश्य से दार्शनिक मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य की व्यवस्था इस प्रकार करना चाहता है कि मनुष्य-समाज के भिन्न-भिन्न अंश 'पूँजी' के पंजों से एक दूसरे को नोचना और चूसना छोड़ सम्पूर्ण समाज को सम्पन्न बना सकने के ढंग पर आ जायँ। इसी को वह समाजवाद कहता है।

इस सुख-कल्पना में उसे दीखने लगता है—संसार भर का मनुष्य समाज श्रेणी, नस्ल, जाति और देशों के रूप में अपने को बाँट कर, एक दूसरे का नाश और शोषण द्वारा जीवन के प्रयत्नों को छोड़, परस्पर सहयोग से जीवन के तरीक़े पर चलने लगेगा! तब मनुष्य का परिश्रम विनाशक तोपें, टैंक, जंगी जहाज़ और गोला बारूद बना आत्म

हत्या करने के बजाय अपनी भूख मिटाने, शरीर ढाँकने और दूसरी आवश्यक चीज़ें पैदा करने के काम में लग जायगा। तब एक-दूसरे को शत्रु समझ परस्पर भयभीत और आशंकित रहने वाले सब देशों में भरे पड़े सिपाही नामधारी मनुष्य, पशुओं की ज़रूरत न रहेगी। स्वयम अपनी व्यवस्था के कारण सदा भयभीत रहने वाला मनुष्य समाज अपनी रक्षा कर पाने के प्रयोजन से इन्हें लड़ाकू मेढ़ों की तरह पालता है। समाज का अंग भंग करने के अलावा कोई दूसरा उपयोगी काम यह लोग नहीं करते। जब ज़बरदस्ती हिंसक बनाकर रखे जाने वाले यह जीव भी समाज के उपयोगी कामों में जुट जायँगे, तब मनुष्य समाज कैसा सुखी हो जायगा? तब दार्शनिक को, शक्ति और सामर्थ्य होते हुए भी, उपयोगी काम कर सकने का अवसर न मिलने के कारण बेकार और बे रोज़गार न रहना पड़ेगा। उसे दाल-रोटी, जूते और कुर्ते के लिये तरसना नहीं पड़ेगा! तब व्यक्ति या दल राज नहीं करेंगे। राज करेगा समाज! दार्शनिक समाजवाद के इस ख़याल में मस्त होकर बेख़ुद सा हो गया। उसी समय अपने पाँव में दो एक चींटियों के दाँतों की आज़माइश करने से उसका ध्यान वास्तविकता की ओर लौट आया! दिखाई देने लगा—एक बड़ा युद्ध, विनाशक युद्ध, जो मनुष्य समाज को कोल्हू में डाली गयी ईख की तरह निचोड़े ले रहा है?.... क्यों?........मनुष्य समाज की व्यवस्था को सही राह पर लाने के लिये! शायद इस विश्वास से मनुष्य की जीवन शक्ति और उत्पादन शक्ति आवश्यकता से बढ़ गई है।

मनुष्य समाज के लिये सही व्यवस्था का सवाल ही तो सब से टेढ़ा प्रश्न है। मनुष्य समाज के लिये एक सही व्यवस्था की कल्पना दार्शनिक भी करता है। दार्शनिक अपनी अनेक बेढंगी कल्पनाओं के लिये मौलिकता का दावा कर सकता है परन्तु समाज की इस नई व्यवस्था की कल्पना के लिये ऐसा दावा वह नहीं कर सकता। प्रकृति

और समाज को छोड़ कल्पना या प्रेरणा लेने का कोई साधन उसके पास नहीं। उसकी इस कल्पना का आधार है—समाज का युग-युग का अनुभव और जीवित रहने की चेष्टा। जीवन की प्रेरणा ही मनुष्य समाज के शरीर को इस कल्पना की ओर अग्रसर कर रही है। समाज का निस्सत्व होता शरीर इस कल्पना द्वारा जीवन निर्वाह के स्रोतों को विनाश से बचाना चाहता है।

अपनी व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिये समाज का यह प्रयत्न पुरानी व्यवस्था की मालिक शक्तियों को पसन्द नहीं.......। यह शक्तियाँ अपनी व्यवस्था के हाथी को अपने मनसे चलाने के लिये जनता के खेत उजाड़ पालती आई हैं। वे पुराने ही ढंग पर डटी रहना चाहती हैं। नई व्यवस्था में अपने पुराने अधिकार हाथ से निकलते देख, इन्हें अपना अन्त दिखाई देने लगता है। अपने अधिकारमय जीवन की रक्षा में ही वे समाज के जीवन की भी रक्षा समझते हैं।

अधिकारी श्रेणी की प्रभुता का वह स्वर्ण काल ही उन्हें शान्ति व्यवस्था, न्याय, धर्म और रामराज्य का आदर्श जान पड़ता है। अधिकार और अपनी विशेषता को खोकर आम जनता में—उस आम जनता में जो केवल उपयोग में आनेवाले पशुओं के समान है—मिल जाना उन्हें मनुष्यसमाज के पशु और बरबर बन जाने के समान जान पड़ता है। मनुष्यत्व का अर्थ उनकी दृष्टि में है—उनकी अपनी श्रेणी राज! अपनी श्रेणी से इतर सब को वे पशु ही समझते आये हैं। उन्हें शायद यह भूल जाता है कि उपयोग की वस्तु न बनी रहकर उपयोग करने की साध जिस जनता में आ गई, वह पशु नहीं रही, मनुष्य बन गई! यह नया मनुष्यत्व विशाल और विस्तीर्ण आधार पर उठने वाले वृक्ष की भाँति बहुत ऊँचा जायगा।

दार्शनिक का विचार है—मनुष्य की शक्ति के विकास के साथ ही उसके हाथ पाँव लंबे हो गये हैं। पुरानी संकीर्ण सीमाओं में रहकर

उसका निर्वाह नहीं। मनुष्य के हाथ पैर छोटे होने की अवस्था में जो *उसका धर्म और आदर्श था, वह धर्म और आदर्श अब उसका नहीं रह* सकता। जब मनुष्यत्व की पहुँच सीमित थी, परिवार उसका आदर्श था। दूसरे परिवार को वह शत्रु समझता था और अपने परिवार के लिये मर मिटना उसका धर्म था। मनुष्यत्व की सीमा बढ़ने पर, समाज के शरीर का आयतन बढ़ने पर, मनुष्य अपने परिवार को देश पर बलिदान कर देता है। और फिर मनुष्य की पहुँच और शक्ति के अनुपात में उसके देश की सीमा भी बढ़ती जाती है गाँव से ज़िले, ज़िले से प्रान्त और प्रान्त से देश की ओर। तब देश को लाँघ कर वह पृथ्वी और संसार भर में फैल जाती है और संसार उसका परिवार हो जाता है। आज मनुष्य समाज के जीवन का तरीक़ा देशों की सीमायें लाँघ पृथ्वी और संसार भर में फैल गया है।

आज कोई भी देश दूसरे देशों से अलग रहकर अकेला जीवित नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में देशभक्ति के भाव से दूसरे देशों से झगड़ा, आत्म हत्या के अतिरिक्त और क्या है? दार्शनिक का विचार है, सीमित राष्ट्रीयता और देशभक्ति मनुष्य की पूँजीवाद की आयु का आदर्श था और उस समय उसका पराक्रम था—साम्राज्यवाद!—अपने देश और राष्ट्र को बलवान बना कर, दूसरे देशों और राष्ट्रों को शत्रु समझ उन्हें शिकार बनाना।

आज मनुष्य समाज बालिग़ हो गया है और उसका आदर्श है:—सम्पूर्ण संसार एक समाज है!

बालिग़ होकर मनुष्य समाज ने आज पहली बार अपने आपको 'मनुष्य' के रूप में पहचाना है। अब तक वह अपने आपको परिवार, जाति, राष्ट्र देश के मनुष्यों और साम्राज्य के संकीर्ण रूपों में ही समझता आया है। अब उसने कहना सीखा है—"संसार के मनुष्य!"

मनुष्यत्व का आधार है, उसके जीवन का सामर्थ्य—उसका

परिश्रम ! इसीलिये बालिग़ और सचेत मनुष्य ने अपने आपको पहचान कर पहली बेर हुँकार की है:—"संसार के परिश्रम करने वालो एक हो जाओ !"

संसार का कौन मनुष्य है जो मनुष्य की इस भावना का विरोध कर सकता है ? कौन है जो परिश्रम किये बिना खाकर जीना चाहता है·······? जो मनुष्य नहीं बनना चाहता, उसका इलाज ?

पुरानी व्यवस्था के बलसे दूसरों के पेट पर हाथी नचाने के वे शौक़ीन, जो साधारण मनुष्य बनजाने के अपमान से मर मिटना बेहतर समझते हैं, जो शेष संसार को अपना शिकार और शत्रु समझ अपने राष्ट्र के साम्राज्य के रूप में अपनी शक्ति का नशा क़ायम रखने के लिये संसार को रक्त का स्नान करा अपने लिये भोग्य बनाये रखना चाहते हैं, इस नयी व्यवस्था के विरुद्ध जी जान से लड़ने के लिये तैयार हैं। अपने देश और राष्ट्र को, संसार की प्रभुता और सम्राट बनने की कल्पना का मद पिला, सम्पूर्ण संसार के सीने में अपनी लौहमय एड़ी गड़ा, अपने पैर के नीचे सम्पूर्ण संसार को कुचला हुआ और सिसकता देखने की बर्बर इच्छा पैदा कर जो लोग अपने निरंकुश शासन का अधिकार क़ायम रखना चाहते हैं, उनकी दृष्टि में मनुष्य और मनुष्यता का मूल्य कुछ भी नहीं। वे कहते हैं—मनुष्य के प्राण बचाने वाली रोटी से उसके प्राण लेनेवाली बन्दूक की गोली अधिक अच्छी है·······।*

संसार भर को अपनी लौहमय एड़ी के नीचे दबा देने का स्वप्न, संसार भर के मनुष्यों के विरुद्ध, मनुष्यत्व को कुचल डालने की ललकार है ; दलितों और पीड़ितों के हृदय में उगते, मनुष्यत्व का अधिकार पाने के, अरमान को कुचल डालने का गुरूर है·······निर्बलों के भविष्य का अन्त है !

* Guns are better than butter—GOEBLES.

अपने राष्ट्र के साम्राज्य के रूप में अपने दल की निरंकुश ताना-शाही क़ायम करने के लिये संसार भर की मनुष्यता को कुचल डालने का यह गुरूर दूसरों की राष्ट्रीयता से टक्कर लिये बिना कैसे रह सकता था ? और सबसे बढ़कर, मनुष्य मात्र के लिये समान अधिकार का दावा करने वाले, मनुष्य को राष्ट्रीयता की संकीर्णता से निकालकर केवल 'मनुष्य' बनाने का यत्न करने वाले समाजवाद को वह अपना बीजनाश करने वाला शत्रु समझे बिना कैसे रह सकता था ?

प्राचीन व्यवस्था की नींव पर, प्राचीन नैतिकता के बल पर, पुराने खुदा की शाह से स्वामी बने रह कर, शोषण का अपना अधिकार बनाये रखने की चेष्टा करने वाले चाहे वे तोप तलवार का ज़ोर दिखायें, चाहे वे प्रेम-सेवा—अहिंसा का ढोंग रचें, वे जनता को स्वयम अपना राजा बनता फूटी आँखों नहीं देख सकते। सामाजिकता और समाजवाद उन्हें सदा ही अन्याय और हिंसा जान पड़ेगी।

अपने आपको मनुष्य समझने का दावा करने वाला, मनुष्यता की हुंकार—'संसार के मेहनत करने वालो ( मनुष्यों ) एक हो जाओ'—से अभिमान करने वाला दार्शनिक, मनुष्यता पर होने वाले इस भैरव आक्रमण के प्रति उदासीन कैसे रह सकता है ?

वह अनुभव करता है—मनुष्य बन सकने की इच्छा करने वाले, पीड़न, शोषण और दमन का विरोध करने वाले चाहे जहाँ कहीं भी हों ; संसार की मनुष्यता में अपनी रक्षा समझने वाले चाहे जिस जगह भी हों ; मनुष्यत्व पर इस बलात्कार और कत्ल को सहन नहीं कर सकते ! जीवित रहने का अधिकार, मनुष्यत्व का आदर्श और महात्वाकांक्षा सजग और सक्रिय हो जाने के लिये उन्हें ललकार रही है।

पैर में काटनेवाली चींटी से अधिक व्याकुल कर दिया दार्शनिक को मनुष्यत्व पर आ रही चोट की पीड़ा ने।

अपने साधनहीन दोनों हाथ मलकर वह सोचने लगा —"साधनों के बिना भी मनुष्य 'मनुष्य' है ?"

अपने असामर्थ्य की ग्लानि में वह केवल यह निश्चय कर रह गया—

"प्राण जाने पर भी मनुष्यत्व के आदर्श को वह न छोड़ सकेगा,······ ················व्यक्ति के मिट जाने पर भी मनुष्यत्व बना रहेगा,········ मनुष्यत्व विजयी हो पृथ्वी भर पर फैलेगा !········चिरजीवी हो मनुष्य का 'मनुष्यत्व'!········मनुष्य की सामाजिक भावना !"

---